जैनधर्म की कहानियाँ

(सती अंजना एवं वीर हनुमान चरित्र)

भाग 4

:: प्रकाशक ::
अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़
श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)

पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ४ पुष्प

ॐ

जैनधर्म की कहानियाँ

(सती अंजना एवं हनुमान चरित्र)

(भाग - 4)

लेखक :

ब्र. हरिभाई सोनगढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – 491-881

मो. 9424111488

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. 9414717816

अबतक प्रकाशित 24,200 प्रस्तुत संस्करण - 1000 प्रतियाँ
श्रुतपंचमी, (31 मई, 2025)

न्यौछावर : 20 रुपये मात्र

जो अनादिकाल से अपने चैतन्यदेव का तिरस्कार किया है, जिसका फल चार गति चौरासी लाख योनियों के दुखरूप अनंत संसार है। उस चैतन्यदेव की शरण में जा और भव-भव के दुखों का अंत कर।

– तत्त्व का सत्य उपदेश धारण कर अंजना ने सावधान हो अपने चैतन्यदेव की प्रतीति कर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को उत्पन्न कर अपने अनंतभवों पर विराम लगा दिया और कुछ ही समय में जगत के जीवों को मोक्षमार्ग प्रशस्त करनेवाले तद्भव मोक्षगामी पुत्ररत्न को उत्पन्न कर जगतजननी बननेवाली हैं।

– इसी पुस्तक से साभार

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015

२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-422401

३. **तीर्थधाम मंगलायतन,**
पो.- सासनी-204216 जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-475685, जिला-दतिया (म.प्र.)

५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. 8619975965

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३६ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में सती अंजना का अनेक उतार-चढ़ाव वाला जीवन चरित्र एवं उसका कारण तथा वीर हनुमान का संक्षिप्त जीवन चरित्र वर्णित किया है।

इसका मूलत: लेखन ब्र. हरिलालजी द्वारा किया गया है। प्रस्तुत परिवर्धित संस्करण में पूर्व विषय के साथ-साथ बहुत कुछ नया विषय भी आया है, जिस अन्तर को पाठक स्वयं स्वाध्याय कर अनुभव करेंगे। इसके अभ्यास से पूर्वकृत भयंकर कर्मों के फल में भी अत्यन्त धैर्य धारण करने की मंगल प्रेरणा प्राप्त होगी। क्रमबद्धपर्याय का भी बोध होगा। इसका सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: दोनों के आभारी हैं।

बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग इनका लाभ ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता सिद्ध करती है। आशा है सभी पाठक गण इससे अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्र. 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9406401800 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

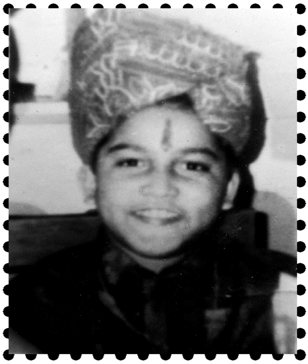

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता-अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
सौ. रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी
स्व.हीराबाई-सागरमलजी ह.-श्री प्रकाश मालू, रायपुर

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका
श्री एल. डी. शाह, देवलाली
स्व. बिदामी-विजयलालजी, ह.गुलाब चौपड़ा, खैरागढ़

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई

एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन,खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

मुमुक्षु मण्डल, भिलाई	6600/-
श्री किशोर शाह निमिता शाह, अमेरिका	5000/-
श्रीमती शांताबेन कोडरलाल दोषी, भायंदर	2100/-
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, ह. श्रुति-अभय, खैरागढ़	1001/-
श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़	501/-
मंजू जैन, भिण्ड	501/-
श्रीमती आंचल निश्चल जैन ह. सरला जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती वीना विजयवर्गीय जैन, ग्वालियर	501/-
संजू कासलीवाल, जयपुर	501/-
स्मिता दिव्यांग शाह, बड़ोदरा	501/-
ख्यातिबेन मेहता, जामनगर	501/-
ऊषाबेन गोधा, रतलाम	501/-
ऊषाबेन सिमलाबेन, कोटा	501/-
श्रीमती प्रज्ञाबेन अनिलभाई, घाटकोपर	501/-
कार्तिकभाई ह. गुलाबबाई	501/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़	501/-
स्व. श्रीमती कंचन-रजनी ह.श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़	501/-
स्व. ढेलाबाई ह.श्रीमती शोभा-मोतीलाल जैन, खैरागढ़	501/-
श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़	501/-
ब्र. अमृतभाई जैन देवलाली	300/-
मा. मर्मज्ञ ह. श्रीमती पूजा-साकेत जैन, बड़वानी	201/-

जिनदर्शन का महात्म्य

''अरे, इस जगत में लक्ष्मी के मोह को धिक्कार है।

हे जीवो ! तुम लक्ष्मी पर गर्व मत करो, लक्ष्मी को प्राप्त कर जिनदेव की भक्ति में तत्पर रहो।

''हे जीव ! तू देव-गुरु-धर्म की विराधना कभी मत करना। सदा बहुमान पूर्वक देव-गुरु-धर्म की आराधना करना।

''देखो ! जिनदर्शन की महिमा ! जिसके प्रताप से पूर्व के पापकर्मों का भी नाश हो जाता है।

सती अंजना एवं हनुमान चरित्र

“यह बात उस समय की है, जब भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ का धर्मतीर्थ चल रहा था। अनंतवीर्य केवली के द्वारा धर्मोपदेश का श्रवण कर हनुमान, विभीषण इत्यादि ने व्रत अंगीकार किये, उनमें भी हनुमान का शील एवं सम्यक्त्व विशेष प्रशंसनीय है।”

– इसप्रकार भगवान महावीर की धर्मसभा में गौतम गणधर से हनुमान की प्रशंसा सुनकर राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया –

“हे प्रभु ! ये हनुमान किसके पुत्र थे, इनका जन्म कहाँ हुआ था ? कृपा कर बतलाने का कष्ट करें।

राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर “जिन्हें सत्पुरुषों की कथाओं से विशेष अनुराग है” ऐसे गौतम गणधर अपनी सुमधुर वाणी द्वारा कहने लगे –

अंजना का जन्म एवं विवाह –

भरतक्षेत्र की दक्षिण दिशा में विद्याधर राजा महेन्द्र राज्य करते थे, उन्होंने एक महेन्द्रपुर नामक सुन्दर नगर की स्थापना की थी। राजा महेन्द्र की जीवन संगिनी का नाम हृदयवेगा था, जिससे अरिन्दम आदि सौ पुत्र एवं अंजना सुन्दरी नामक एक महारूपवान एवं गुणवान कन्या का जन्म हुआ।

एक बार अंजना सुन्दरी की यौवनावस्था देखकर राजा महेन्द्र को उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई। अत: उन्होंने अपने बुद्धिमान मंत्रियों को बुलाकर उनसे अंजना सुन्दरी के वैवाहिक सम्बन्ध के संदर्भ में विचार-विमर्श किया कि पुत्री अंजना का शुभ-विवाह किसके साथ करना उचित है ?

राजा द्वारा पूछे गये प्रश्न के प्रत्युत्तर स्वरूप किसी ने लंकाधिपति रावण के नाम का तो किसी ने इन्द्रजीत का तो किसी ने मेघनाथ के नाम का प्रस्ताव रखा।

प्राप्त प्रस्तावों को सुनकर धन्यमंत्री कहने लगे – "हे राजन् ! दक्षिणश्रेणी में कनकपुर नामक नगर के राजा हिरण्यप्रभ एवं रानी सुमना का सुयोग्य पुत्र सौदामिनी कुमार (विद्युतप्रभ) है। वह गुणवंत, यशवंत तो है ही, साथ ही पराक्रमी भी ऐसा है कि सारे विद्याधर भी एक साथ युद्ध हेतु प्रस्तुत हों, तथापि उसे पराजित नहीं कर सकते। अत: मेरे विचार से तो राजकुमारी के लिये इससे उपयुक्त वर अन्य नहीं हो सकता।"

धन्यमंत्री के उक्त प्रस्ताव को सुनकर संदेहपराग नामक दूसरा मंत्री अत्यन्त गंभीर होकर कहने लगा –

"यद्यपि यह नि:संदेह सत्य है कि कुमार विद्युतप्रभ महाभव्य है, किन्तु उनके मन में सदैव संसार की अनित्यता – क्षणभंगुरता की विचार-तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं, सम्भवत: वे वैरागी कुमार तो अल्पवय में ही इस असार-संसार का परित्याग कर मोक्ष-प्राप्ति हेतु अन्तर-बाह्य दिगम्बर दशा को अंगीकार कर लेंगे और विषयाभिलाषा विहीन वे कुमार विकार एवं अपूर्णता का क्षय करके परिपूर्ण साध्य दशा को प्राप्त करेंगे। ऐसी स्थिति में उनके साथ राजकुमारी अंजना का विवाह करने से कन्या पतिविहीन हो जावेगी।

हाँ ! भरतक्षेत्र की विजयार्द्धपर्वत की दक्षिणश्रेणी में आदित्यपुर नामक नगर है, वहाँ राजा प्रहलाद एवं रानी केतुमति के वायुकुमार (पवनंजय या पवनकुमार) नामक पुत्र है, जो कि महापराक्रमी, रूपवान, शीलवान एवं गुणवान है, वही सर्वप्रकार से कन्या के योग्य उत्तम वर है – ऐसा मेरा मानना है।"

संदेहपराग मंत्री की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ और सभी ने इस सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रदर्शित की।

वसंतऋतु एवं फाल्गुनी मास की अष्टान्हिका का शुभागमन हुआ। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक चलने वाला अष्टान्हिका पर्व महामंगल स्वरूप है। इस पावन अवसर पर इन्द्रादि देव तो नंदीश्वर

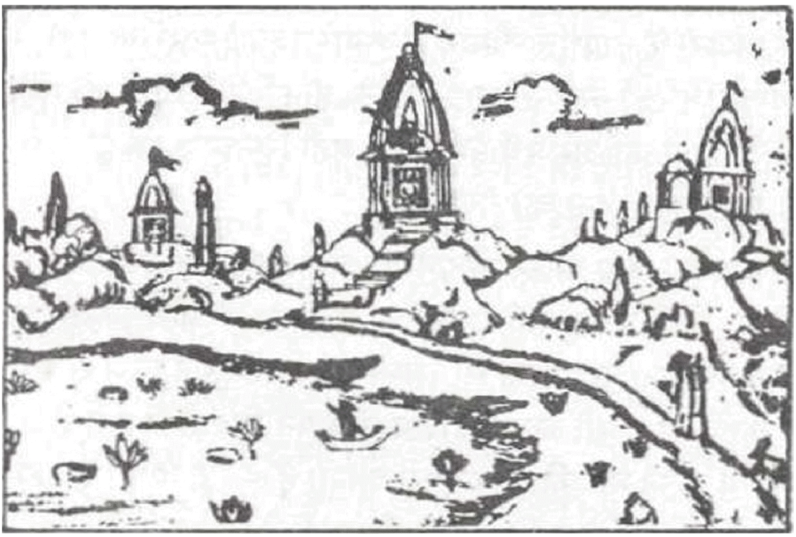

द्वीप में विराजमान शाश्वत जिन-बिम्बों के दर्शन-पूजनार्थ जाते हैं और मानव समाज भी अपनी-अपनी शक्ति एवं भावनानुसार इस पर्व को उत्साह पूर्वक मनाता है।

राजा महेन्द्र ने भी महेन्द्रनगर निवासी विद्याधरों के साथ अष्टान्हिका पर्व पर कैलाशपर्वत जाकर **चक्रवर्ती भरत द्वारा स्थापित जिन-बिम्बों के दर्शन-पूजन करने का निर्णय किया। कैलाशपर्वत भगवान ऋषभदेव की पवित्र निर्वाणस्थली होने से परम पावन एवं पूजनीय है।** भरत चक्रवर्ती एवं कामदेव बाहुबलि आदि अनेक अन्य भव्यात्माओं ने भी यहाँ से निर्वाण की प्राप्ति की है।

उन्होंने शीघ्र ही परिजन-पुरजन एवं राजकुमारी अंजना सहित वहाँ पहुँचकर जिनप्रभु के दर्शन-पूजन किये, तत्पश्चात् राजा महेन्द्र गिरिराज के प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करते हुए एक स्वच्छ शिला पर बैठ गये।

उसी समय कुमार पवनंजय सहित राजा प्रहलाद भी वहीं पधारे हुये थे और दर्शन-पूजन से निवृत्त हो, गिरिराज पर ही घूम रहे थे कि अनायास राजा महेन्द्र की नजर उन पर पड़ी। राजा महेन्द्र ने प्राथमिक अभिवादन के पश्चात् उनसे कहा – "हे राजन् ! बहुत दिनों से एक विचार मन में चल रहा है कि 'अपनी प्रिय पुत्री अंजना का शुभ-विवाह आपके सुपुत्र पवनकुमार के साथ कर दूँ' क्या आप मेरी इस विनम्र प्रार्थना को स्वीकार कर अनुगृहीत करेंगे ?"

इस बात को सुनकर राजा प्रहलाद बोले – "हे राजन् ! यह तो मेरे पुत्र का महान भाग्य है कि उसे अंजना जैसी सुशील जीवन संगिनी प्राप्त हो रही है। आप इस सम्बन्ध को पक्का ही समझिये।"

इसप्रकार अंजना एवं पवनकुमार का सम्बन्ध तो निश्चित हो ही गया, साथ ही तीन दिन पश्चात् उसी मानसरोवर पर विवाह होना भी तय हो गया।

अंजना के अद्भुत सौन्दर्य से कुमार पवन अपरिचित न थे, अत: वे उसे देखने के लिये अत्यन्त व्यग्र हो उठे, तीन दिन के विरह को भी सहन करने में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे, यही चिन्तन उनके हृदय में चल रहा था कि कब अंजना को देखूँ ?

अत्यन्त व्यग्र होकर उन्होंने यह बात अपने अन्तरंग मित्र प्रहस्त से कही – "हे मित्र ! तुम्हारे अतिरिक्त यह बात मैं अन्य किससे कहूँ ? जैसे बालक अपना दुख माता से, शिष्य गुरु से, किसान राजा से एवं रोगी वैद्य से कहता है। उसी प्रकार बुद्धिमान अपने मित्र से

कहता है – यही समझकर मैं अपने मन की बात तुमसे कहता हूँ – "हे मित्र ! सुन्दरी अंजना को देखे बिना मुझे चैन नहीं है।"

कुमार की व्यग्रतापूर्ण बात को सुनकर प्रहस्त मुस्करा उठा। रात्रि होते ही दोनों मित्र विमान द्वारा अंजना के महल में पहुँच गये। झरोखे में छुपकर अंजना के रूप-सौन्दर्य को देखकर कुमार पवन को वैसा ही हर्ष हुआ, **जैसा भव्यजीव को जिनेन्द्र परमात्मा का रूप देख कर होता है।**

उस समय अपने महल की सात मंजिल के अपने कक्ष में अंजना अपनी सखियों सहित बैठी हुयी थी, तब अंजना की बुद्धिमान सखी वसन्तमाला कहने लगी – "हे सखी ! तुम धन्य हो, तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे पिता ने पवनकुमार जैसा जीवन-साथी तुम्हारे लिये चुना, पवनकुमार महापराक्रमी भव्यात्मा हैं।"

वसंतमाला की इस बात को सुनकर कुमार आनंदित हो उठे। तभी दूसरी सखी मिश्रकेशी इसप्रकार कहने लगी – "तुम पवनकुमार को पराक्रमी बतलाती हो और इस सम्बन्ध को बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से बखान करती हो – यह तुम्हारा अज्ञान है। हमारी राजकुमारी का सम्बन्ध यदि विद्युतप्रभ के साथ होता तो बात ही कुछ और होती।

अरे ! कहाँ विद्युतप्रभ और कहाँ पवनकुमार – दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। तुम्हें ज्ञात होगा कि पहले सबका विचार विद्युतप्रभ के साथ सम्बन्ध करने का ही था, पर जब महाराज ने सुना कि वे तो कुछ ही समय पश्चात् मुनि होनेवाले हैं, तब इस प्रस्ताव को निरस्त कर दिया गया; किन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं हुआ। अरे ! विद्युतप्रभ जैसे महापुरुष का संयोग तो अन्य क्षुद्र पुरुष के दीर्घकालीन संयोग की अपेक्षा एक क्षणमात्र के लिये भी श्रेष्ठ है।

सखी की अपमान जनक बात सुनते ही पवनकुमार क्रोधित हो

उठे, वे विचारने लगे – "अंजना को मुझसे किंचित् भी स्नेह नहीं है। लगता है विद्युतप्रभ से ही इसका स्नेह है, तभी तो सखी के ऐसे वचन सुनकर भी यह मौन है।"

ऐसा विचारकर उन्होंने क्रोधित हो म्यान से तलवार निकाल ली, किन्तु तभी प्रहस्त मित्र ने उन्हें रोकते हुए कहा – "मित्र ! यहाँ हम गुप्तरूप से आये हैं और इसी तरह वापस चलना चाहिये। प्रहस्त के कथनानुसार कुमार ने क्रोधित दशा में ही वहाँ से प्रस्थान कर दिया, किन्तु वे अंजना की तरफ से एकदम उदास चित्त हो गये, अत: उन्होंने उसके परित्याग का निर्णय कर लिया। **जैसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति कचिंत् भी विराधना का भाव आ जाने पर सम्यग्दर्शन सदा के लिए दूर हो जाता है।**

देखो परिणामों की विचित्रता, कुछ देर पूर्व जिसे देखे बिना चैन नहीं था, अब उसी का मुख देखना भी असहनीय प्रतीत होने लगा, रे संसार....!

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि **यद्यपि अंजना ने दोनों ही सखियों के कथन पर हर्ष-विषाद प्रगट नहीं किया, तथापि पवनकुमार को एक की बात से हर्ष हुआ और दूसरी की बात से विषाद हुआ, और वह प्रगट भी हो गया।**

अपने निवास पर आते ही पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा – "हे मित्र ! अपना स्थान अंजना के निवास के नजदीक है, अत: अब अपने को यहाँ नहीं रहना है, उससे स्पर्शित होकर आनेवाली हवा भी मुझे कष्टप्रद प्रतीत होती है; अत: चलो, यहाँ से चलें।

कुमार की आज्ञा पाते ही उनके सम्पूर्ण संघ ने प्रस्थान की तैयारी प्रारम्भ कर दी; फलत: हाथी, घोड़े, रथ पैदल आदि सेना में कोलाहल का वातावरण व्याप्त हो गया।

पवनकुमार के संघ के लोग अचानक प्रस्थान का आदेश सुनकर अचम्भित हो उठे कि यह क्या ? बिना कारण प्रस्थान की आज्ञा क्यों ? कोई कहता है कि इसका नाम पवनंजय है, अत: इसका चित्त भी पवन के समान चंचल है।

अंजना का निवास निकट ही होने से कुमार की सेना के प्रस्थान का कोलाहल शीघ्र ही उसके कानों तक जा पहुँचा, उससे उसके हृदय पर मानो वज्रपात ही आ गिरा। वह विचारने लगी – "हाय ! क्या करूँ ? अब क्या होगा ? मेरा तो कोई अपराध भी दिखायी नहीं देता। लगता है मिश्रकेशी द्वारा कथित निंदापूर्ण वचनों की भनक कुमार को लग गयी – यही कारण है कि मेरे प्राणनाथ मुझ पर कृपा रहित हो गये और मेरा परित्याग कर प्रस्थान कर रहे हैं। यदि मेरे प्राणनाथ मेरा परित्याग कर देंगे तो मैं भी अन्न-जल का परित्याग कर शरीर त्याग दूँगी।"

अंजना के पिता राजा महेन्द्र को जब कुमार के प्रस्थान के समाचार विदित हुये तो वे अपने बंधुजनों सहित राजा प्रहलाद के निकट आये और दोनों ने कुमार को समझाया – "हे शूरवीर ! प्रस्थान के विचार को निरस्त कर हम दोनों के मनोरथ की सिद्धि करो, गुरुजनों की आज्ञा आनन्ददायिनी होती है, अत: हमारी आज्ञा स्वीकार करो" – ऐसा कहकर उन्होंने प्रेमपूर्वक कुमार का हाथ पकड़ लिया।

पिता एवं पितातुल्य राजा महेन्द्र के वचनों द्वारा कुमार विनम्र हो गये और गुरुजनों की गुरुता का उल्लंघन करने में अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगे। अत: प्रस्थान की आज्ञा को तो उन्होंने निरस्त कर दिया, पर मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि अंजना से विवाह करके उसका परित्याग कर दूँगा।

राजकुमार के प्रस्थान न करने के समाचार सुनते ही अंजना का

हृदय प्रसन्न हो गया और फिर लग्न के शुभावसर पर मानसरोवर के किनारे शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक पवनकुमार एवं कुमारी अंजना का शुभ-विवाह संपन्न हुआ। अंजना को तो कुमार के प्रति पूर्ण प्रीतिभाव था, किन्तु कुमार का भाव अंजना के प्रति अप्रीतिरूप था, पर इस बात का परिज्ञान अंजना को न था।

यथासमय सभी ने अपने-अपने देशों को प्रस्थान किया।

यहाँ पर गौतम गणधर कहते हैं – "हे श्रेणिक ! जो जीव वस्तुस्वरूप की सत्यता को समझे बिना अज्ञानतावश पर के दोष ग्रहण करते हैं, **उन्हें मूर्ख समझना चाहिये,** वे दूसरों के पापोदय का तो नाश करने में निमित्त होते हैं और स्वयं पाप का बंध करके अपने दुख का साधन जुटा लेते हैं एवं जो दूसरों के द्वारा किये गये दोषों को भी अपने पूर्व पाप का फल जानकर समता से सहन करते हैं, **उन्हें विवेकी समझना चाहिये।**"

विवाह उपरान्त अंजना का परित्याग :–

पवनकुमार ने राजकुमारी अंजना से विवाह तो कर लिया, पर बाद में उसका पूरी तरह त्याग कर दिया – अब वे उससे कभी बात तक नहीं करते, उन्होंने अपने से भिन्न महल में ठहरा कर अंजना को अपने से सर्वथा प्रथक् कर उसकी दशा मानों वैधव्य के समान कर दी हो। पति के इस निष्ठुर व्यवहार से असह्य दुख का अनुभव करती हुई अंजना इन्हें अपने पूर्वभव के किए हुए कुकृत्यों का फल जाकर निरन्तर समताभाव से रहने का प्रयास करती, अपने स्वामी का दोष न देखते हुए अपने ही दोषों की निंदा-गर्हा करती, फिर भी उसे न दिन को चैन रहता और न रात्रि को नींद आती, उसकी आँखों से निरंतर आँसुओं की धारा बहती रहती, शरीर भी अत्यन्त मलिन कान्तिहीन हो गया।

पति से किसी प्रकार की शिकायत न होने से सदा उनके आने की आशा में समय बिताती हुई सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में अपने उपयोग को स्थिर करने का प्रयास करती। – पति का नाम 'पवन' होने से पति के महल की ओर से आनेवाली हवा भी उसे आनंददायिनी प्रतीत होती। विवाह-वेदी पर एक दृष्टिमात्र देखी हुई पति की छवि का स्मरण कर संतोष को धारण करती, निश्चलरूप से सर्वचेष्टा विहीन हो बैठी रहती। – ऐसी दशा हो जाने से अंजना का सर्वांग सुन्दर शरीर भी दुर्बल हो गया, आभूषण ढीले हो गये एवं शरीर पर वस्त्राभूषण भी भाररूप प्रतीत होने लगे।

वह माता-पिता को याद तो करती, पर किसी प्रकार की शिकायत के रूप में नहीं। अपने ससुर एवं सासु माँ को भी इसी रूप में याद करती कि वेचारे वे क्या करें ? उन्होंने तो समझाने की सर्व प्रकार से कोशिश की, पर मेरे तीव्र असाता का उदय होने से वे नहीं समझे। ठीक भी है, **समझ में समझाने से आता भी कहाँ है ? समझ में तो समझने से ही आता है।** इसीलिए आदिनाथ प्रभु के समझाने पर मरीचि (मारीचि) को कहाँ समझ में आया था।

अस्तु ! लौकिक सभी कार्य उदय के आधीन हैं, क्योंकि **संयोग-वियोग उदयानुसार होते हैं और सुख-दुख परिणाम अनुसार होते हैं – यह तो स्पष्ट ही भासित होता** है। जब मैं प्रभु भक्ति में परिणाम लगा लेती हूँ तो दुख कम महसूस होता है और जब परिणाम पति वियोग में लगाती हूँ तो दुख अधिक महसूस होने लगता है। एवं **कार्य तो अपने समय में अपनी योग्यतानुसार ही होता है,** सो जब पति के संयोगरूप कार्य होने की योग्यता होगी तब ही संयोग होगा, व्यर्थ विकल्पों से काई लाभ नहीं है। फिर भी...

बेचारी ! विकल्प की मारी, नाना प्रकार विचार करती हुई मन

ही मन पति से इस प्रकार अनुरोध करती – "हे नाथ ! आप सदैव मेरे हृदय-कमल पर विराजमान होने पर भी मुझे आताप क्यों देते हैं। जब मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया, तब बिना कारण मुझ पर कोप क्यों ? हे नाथ ! अब तो प्रसन्न होइये, मैं तो आपकी दासी हूँ, मेरे चित्त के शोक का हरण कीजिये। जैसे अन्तर में दर्शन देते हैं, वैसे ही बाहर से भी दर्शन दीजिये – यही मेरी करबद्ध सविनय प्रार्थना है।" – इस प्रकार निज चित्त में स्थापित पति से बारम्बार मनुहार करती थी और आँखों से मोती के समान आँसू गिराती रहती।

सखी वंसतमाला अंजना की सेवार्थ अनेक प्रकार की सामग्री लाती, पर उसे तो कुछ भी रुचिकर न लगता। उसका चित्त तो पति वियोग में चक्र की भांति भ्रमित हो गया था। पति वियोग से दुखित वह न तो अच्छी तरह स्नान करती, न बाल संवारती।

पति वियोग में वह तो सर्व क्रियाओं से उदास – ऐसी हो गयी मानो **पाषाण ही हो**, निरंतर अश्रु-प्रवाह के बहने से मानो **जलप्रपात ही हो**, हृदयदाह से संतप्त मानो **अग्नि ही हो**, सदा ही विकल्पों में रहने के कारण मानो **हवा ही हो** और चित्त की शून्यता से मानो वह **आकाशरूप ही हो गयी हो।**

मोह के कारण उसका ज्ञान भी आच्छादित हो गया था, सर्व अंग इतने दुर्बल हो गये थे कि उठना-बैठना भी दूभर हो गया था। बोलने की अभिलाषा करती, पर शब्द नहीं निकलते; पक्षियों से कलोल करने की भावना होती, पर वह भी दुष्कर था – इसप्रकार बेचारी सबसे न्यारी गुमसुम बैठी रहती। उसका चित्त तो पति में ही लगा था, उसको निष्कारण पति-वियोग के कारण एक-एक पल भी वर्षों के समान प्रतिभासित होता था।

उसे दुख से दुखित देखकर व्याकुलित हुये परिजन भी ऐसा

चिन्तन करते थे – "इसे ऐसा दुख किस कारण से हुआ ? यह तो इसके द्वारा पूर्वोपार्जित पापकर्मों का ही फल है, अवश्य ही इसने पूर्वजन्म में देव-शास्त्र-गुरु की विराधना की होगी, उसी का यह फल है। पवनकुमार तो इस दशा में निमित्तमात्र हैं।

फिर भी अरेरे ! इस बेचारी से विवाह करके पवनकुमार ने क्यों इसका परित्याग कर दिया, अरेरे ! जिसने पिता के घर में रंचमात्र भी कभी दुख नहीं देखा हो, वही आज अथाह दुख को प्राप्त हुई है। वास्तव में यह सब कर्मों के उदय की ही विचित्रता है, जो आज ऐसी परिस्थिति में लाकर खड़ा कर दिया। पर वास्तविक बात तो यह है कि **उदय कैसा भी हो ज्ञानी प्रत्येक परिस्थिति में अपने ज्ञायक भगवान आत्मा का स्मरण करते हुए, उस उदय में स्वामित्व न करते हुए निर्लिप्त ही रहते हैं।**"

फिर भी सभी हितैषी विचार करते रहते हैं –"हम क्या उपाय करें ? अरे ! हम तो भाग्यहीन हैं, यह कार्य हमारे यत्नसाध्य नहीं है। यह तो इसके कोई अशुभकर्म का फल है। हे प्रभु ! कब वह शुभ दिन आयेगा, जब यह अपने प्रीतम की कृपा-दृष्टि प्राप्त करेगी।"

– ऐसे प्रतिकूल प्रसंग के समय अंजना देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हुए, अपने में अपनापन स्थापित करके स्वयं को सदा परिपूर्ण अनुभव करती। इसप्रकार वह इन दुख के दिनों को व्यतीत कर रही थी। उसकी प्रिय सखी वसन्तमाला उसे प्रसन्न करने के लिये हर संभव प्रयत्न करती थी। वे कभी तो आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन की चर्चा करतीं तो कभी देव-गुरु-धर्म की भक्ति करतीं, कभी वीतरागी संतों का स्मरण करते हुये उनकी वैराग्यभावपूर्ण कथा-वार्ता करतीं, **उस समय अवश्य अंजना का दुख कुछ कम हो जाता था, क्योंकि वास्तव में अपने शुद्ध चैतन्य उपयोग में तो दुख**

का प्रवेश ही नहीं है, यह जीव ही स्वयं जब उपयोगस्वरूप कारणपरमात्मा से व्यक्त उपयोग को हटाकर परसंयोगों में लगता है, तब स्वयं ही दुख का अनुभव करता है और जब देव-गुरु-धर्म की भक्ति आदि में लगाता है तब **दुख कुछ कम अनुभव में आता है।**

अतः बारम्बार बुद्धिपूर्वक अपने आप से यह प्रश्न करती कि हे जीव ! महाभाग्य से यह मानव-भव एवं श्री जिनधर्म का समागम मिला है, यदि अभी सही दिशा में सम्यक् पुरुषार्थ नहीं किया तो फिर किस भव में करेगा ?

इसप्रकार सखी सहित अंजना के २२ वर्ष व्यतीत हो गये कि तभी ....।

बाईस वर्ष बाद...अंजना-पवनकुमार का मिलाप :–

जिस समय की यह कथा है, उस समय राजाओं पर लंकाधिपति महाराज रावण की आज्ञा चलती थी, किन्तु राजा वरुण ही एकमात्र ऐसा राजा था, जो रावण की आज्ञा का उल्लंघन करता था। उसका कहना था कि रावण को देवों द्वारा प्रदत्त शस्त्रों का गर्व है, किन्तु मैं उसे गर्वरहित कर दूँगा। इसी बात से कुपित होकर रावण ने उसे दैवी शस्त्रों के बिना ही पराजित करने की प्रतिज्ञा कर ली और युद्ध में सहायतार्थ अनेक राजाओं को आमंत्रित किया। पवनकुमार के पिता राजा प्रहलाद के यहाँ भी पत्र भेजा गया।

पत्र में लिखा था – "समुद्र के मध्यद्वीप में पातालनगर निवासी राजा वरुण को जीतने के लिये हमने युद्ध प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु युद्ध में राजा वरुण के पुत्रों ने हमारे बहनोई खरदूषण को बन्दी बना लिया है, अतः उन्हें छुड़ाने एवं युद्ध में सहायतार्थ आप शीघ्र ही आवें।"

पत्र द्वारा आज्ञा प्राप्त होते ही रावण की सहायतार्थ जाने के लिए स्वामी भक्त राजा प्रहलाद तैयार हो गये। उन्हें प्रस्थान के लिये तैयार देख कुमार पवन ने कहा – ''हे पिताजी ! आप युद्ध में पधारने के विचार का त्याग कर मुझे युद्ध में जाने हेतु अनुमति प्रदान करें। मैं शीघ्र ही राजा वरुण को पराजित कर दूँगा।''

तब पिता एवं माता से आज्ञा प्राप्त कर परिजनों को धैर्य बँधाकर भगवान अरहन्त-सिद्ध के स्मरण पूर्वक कुमार ने विदा ली। उस समय अंजना सुन्दरी आँसू-भीगी आँखों से दरवाजे पर खम्बे के सहारे खड़ी थी, जिसे देखकर खम्बे में उत्कीर्ण पुतली की आशंका होती थी।

उस पर नजर पड़ते ही कुमार ने अपनी नजर फेर ली और कुपित स्वर में कहा – ''अरे ! तेरा दर्शन भी कष्टप्रद है, तू इस स्थान से चली जा, निर्लज्ज होकर यहाँ क्यों खड़ी है ?''

पति के ये कर्कश वचन भी उस समय अंजना को ऐसे मधुर प्रतीत हुये, जैसे बहुत दिनों से प्यासे चातक को मेघ की बूँद प्रिय लगती है।

वह हाथ जोड़कर खेदपूर्वक हो कहने लगी – ''हे नाथ ! जब आप यहाँ रहते थे तब भी मैं वियोगिनी थी, परन्तु 'आप निकट ही हैं' – ऐसी आशा से प्राण जैसे-तैसे टिके रहे; लेकिन अब तो आप इस नगर से भी दूर जा रहे हैं, अत: मैं किस प्रकार जीवित रहूँगी?

''हे नाथ ! परदेश गमन के इस प्रसंग पर आपने न मात्र नगर के मनुष्यों, वरन् पशुओं को भी धैर्यता प्रदान की है और सभी को अपनी अमृतमयी वाणी से सन्तुष्ट किया है। एकमात्र मैं ही आपकी अप्राप्ति से दुखी हूँ। मेरा चित्त आपके चरणारविन्द का अभिलाषी है, आपने अन्य सभी को अपने श्रीमुख से धैर्य प्रदान किया है, अत: यदि उन्हीं की तरह आप मुझे भी कुछ धैर्य प्रदान करते तो... जब

आपने ही मेरा परित्याग कर दिया, तब मेरे लिये जगत में कौन शरणरूप है ?'' अत: अब तो मेरे चित्त में एक ही भावना है कि जिस-तिस प्रकार एकमात्र जिनशासन की सेवा में ही तत्पर रहूँ।

तब कुमार ने मुँह बिगाड़कर कुपित स्वर में कहा – ''फिर मर क्यों नहीं जाती ?'' – इतना सुनते ही अंजना खेद-खिन्न हो धरती पर गिर पड़ी, कुमार इस अवस्था से प्रभावित हुए बिना वहाँ से प्रस्थान कर सांयकाल सेनासहित मानसरोवर पर आ पहुँचे।

अपने मित्र प्रहस्त सहित जब वे महल के झरोखे में से मानसरोवर के स्वच्छ जल में हंस एवं चातक, चकवी-चकवा आदि पक्षियों को क्रीड़ा करते देखकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे, तभी सूर्यास्त हो गया और चकवा-चकवी बिछुड़ गये, उसके वियोग से संतप्त चकवी अकेली आकुल-व्याकुल होने लगी। चकवे को देखने के लिये उसके नेत्र अस्ताचल की ओर लगे हुये थे, वह बारम्बार कमलनाल के छिद्र में उसे शोध रही थी, कमल के रस का स्वाद भी उसे विषतुल्य प्रतीत हो रहा था, इस कारण चकवे की अप्राप्ति से वह अत्यन्त शोकाकुल हो रही थी। सेना के हाथी-घोड़ों के शब्दों को सुनकर अपने पति वियोग की कल्पना से वह अपने चित्त को भ्रमित कर रही थी तथा आकुलतामय भाव से दशों दिशाओं का अवलोकन कर रही थी, किन्तु कहीं भी अपने पति को न देखकर धरती पर आ गिरी। साहित्य में ऐसा वर्णन आता है कि रात्रिकाल में चकवा-चकवी आस-पास ही बैठे हों तो भी एक-दूसरे को दिखाई नहीं देते।

बहुत समय तक चकवी की ऐसी दशा को, चकवी की व्याकुलता को देखकर पवनकुमार का चित्त दया से आर्त हो गया। उस समय कुमार को अंजना की याद सताने लगी, उनके मन में विचारों के तूफान चलने लगे –

"अरे रे ! यह चकवी प्रीतम के वियोग में किस तरह शोकाग्नि में जल रही है, यह मनोहर मानसरोवर एवं चन्द्रमा की चन्दन-सदृश चाँदनी भी इस वियोगिनी को दावानल-सदृश दाहकारक प्रतीत हो रही है। जब यह चकवी अपने पति से एक रात के वियोग को सहन करने में असमर्थ हो रही है, तब वह महासुन्दरी अंजना किस प्रकार बाईस वर्ष से मेरे वियोग को सहन कर रही होगी, उसकी क्या दशा हुई होगी ? अरे ! यह वही तो मानसरोवर है, वही तो यह स्थान है, जहाँ हमारा विवाह हुआ था।" विवाह स्थल पर नजर पड़ते ही कुमार के शोक की अभिवृद्धि हो गयी।

वे सोचने लगे – "हाय ! हाय !! मैं कैसा निष्ठुर चित्त हूँ, मैंने व्यर्थ ही उस निर्दोष का परित्याग कर दिया। कटुवचन तो उसकी सखी ने कहा था, उसने तो कुछ भी नहीं कहा था; तथापि मैंने बिना विचारे दूसरे के दोष से उसका त्याग कर दिया। उस निर्दोष सती को अकारण दुख दिया, इतने वर्षों तक उसे वियोगिनी बनाये रखा। हाय हाय ! अब मैं क्या करूँ ? घर से तो पिताश्री द्वारा विदा लेकर निकला हूँ, अब वापस भी किस तरह जा सकता हूँ। इसप्रकार पवनंजय कुछ समय के लिए तो पश्चाताप के सागर में गोते लगाने लगे। फिर संभलते हुए विचार करने लगे कि – **कषायों का स्वरूप ही ऐसा है कि वे तीव्र हों तो अपराध कराती हैं और मंद हों तो पश्चाताप कराती हैं,** पर अब करूँ तो करूँ क्या ? बड़े धर्म संकट में फँस गया हूँ। यदि मैं अंजना से मिले बिना संग्राम में जाता हूँ तो निश्चित ही वह मेरे वियोग में प्राण त्याग देगी और उसके अभाव में मेरा अभाव भी सुनिश्चित है। जगत में जीवन के समान कुछ नहीं है, अत: सर्व संदेह का निवारण करने वाले अपने मित्र प्रहस्त से इसका उपाय पूछूँ। वह हर प्रकार से प्रवीण एवं विचारशील है।"

शास्त्रों में सत्य ही कहा है कि विश्व में कोई किसी को समझाने में समर्थ नहीं है, जब भी कोई समझता है तो स्वयं से ही समझता है। इसलिए तो कहा है –

जा करि जैसे जाहि समय में जो हो तब जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं कर लीनो निरधार॥
हमको कछु भय ना रे, जान लियो संसार।

– इसप्रकार अन्तर्द्वन्द्व के समुद्र में गोते खाते हुए पवनकुमार को देखकर, जो कुमार के सुख से सुखी एवं दुख से दुखी हो जाता है – ऐसा मित्र प्रहस्त पूछने लगा – "हे मित्र ! तुम किस चिन्ता में मग्न हो, तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये कि तुम महाराज रावण की सहायतार्थ वरुण जैसे योद्धा के सन्मुख युद्ध हेतु जा रहे हो। याद रखो, इस समय प्रसन्नता में ही कार्यसिद्धि निहित है। फिर भी आज तुम्हारे मुख-कमल की मलिनता का क्या कारण है ? संकोच का परित्याग कर मुझे वस्तुस्थिति से अवगत कराओ। तुम्हें चिन्तामग्न देखकर मुझे व्याकुलता हो रही है।"

पवनकुमार ने कहा – "हे मित्र ! बात ही कुछ ऐसी है, जो किसी से कही नहीं जा सकती। यद्यपि मेरे हृदय की समस्त वार्ता कहने का एकमात्र स्थान तुम्हीं हो, तुममें और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है, तथापि यह बात कहते हुये मैं संकोच का अनुभव कर रहा हूँ।"

प्रहस्त कहने लगा – "हे कुमार ! तुम्हारे चित्त में जो हो वह कहो, जो कुछ तुम मुझसे कहोगे वह बात सदैव गोपनीय रहेगी – यह मेरा वचन है। जैसे गर्म लोहे पर गिरा हुआ जल-बिन्दु शीघ्र ही विलय को प्राप्त हो जाने से दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार मुझसे कही हुई तुम्हारी बात प्रगट नहीं होगी।"

तब कुमार कहने लगे – "हे मित्र ! सुनो – मैंने कभी भी अंजना

के साथ प्रीति नहीं की, इस कारण आज मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। हमारे विवाह को बाईस वर्ष हो चुके हैं, पर मैं आजतक उससे नहीं मिला, यह तो तुम जानते ही हो कि मैंने विवाह के बाद आदित्यपुर आकर उसे प्रथक् महल में ठहरा दिया था, आज भी आते समय अपने कटु वचन-बाणों से उसका हृदय विच्छिन्न ही किया है, पर अब यहाँ आने के बाद मुझे उसका दरवाजे पर खड़े हुए समय का वियोगावस्थाजनित दुखी चेहरा दिख रहा है। वह दृश्य अभी भी मेरे मानस-पटल पर बाण की भांति चुभ रहा है।

अत: हे मित्र ! अब वह प्रयत्न करो, जिससे हमारा सम्मिलन संभव हो सके, अन्यथा हम दोनों का मरण सुनिश्चित है।''

कुछ देर विचार कर प्रहस्त बोला – ''हे मित्र ! तुम माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर युद्ध में शत्रु को परास्त करने निकले हो, अत: वहाँ वापस जाना तो अनुचित है ही और अंजना को यहाँ बुलाना भी उचित नहीं है, क्योंकि तुम्हारा व्यवहार आज तक उसके प्रति निराशाजनक रहा है – ऐसी स्थिति में तो यही संभव है कि तुम गुप्तरूप से वहाँ जाओ और उसका अवलोकन करके सुख-संभाषण कर आनन्दपूर्वक प्रात:काल होने के पूर्व ही वापस यहाँ आ जाओ – ऐसा करने से तुम्हारा चित्त शान्त होगा, परिणामस्वरूप तुम शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकोगे।''

इसप्रकार निश्चय करके सेना की रक्षा का भार सेनापति के सुपुर्द कर दोनों मित्र मेरु-वंदना के बहाने आकाशमार्ग से अंजना के महल की तरफ प्रस्थान कर गये। उस समय कुछ रात्रि व्यतीत हो गयी थी, अंजना के महल में दीपक का प्रकाश टिमटिमा रहा था, पवनकुमार के शुभागमन का शुभ समाचार देने हेतु कुमार को बाहर ही छोड़कर प्रहस्त भीतर गया और उसने दरवाजा खटखटाया।

आहट पाकर अंजना ने पूछा – 'कौन है ?' और नजदीक ही शयन कर रही सखी वसन्तमाला को जगाया; तब सर्व बातों में निपुण वसन्तमाला अंजना के भय को निवारण करने को उद्यत हुई तथा दरवाजा खोला। जब प्रहस्त ने नमस्कार करके पवनकुमार के शुभागमन का समाचार अंजना को सुनाया तो वह सहसा इस बात पर विश्वास न कर सकी और यह समाचार उसे स्वप्नवत् ज्ञात हुआ।

गद्गद् वाणी द्वारा वह प्रहस्त से कहने लगी – "हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पतिकृपाविहीन हूँ, तुम क्यों मेरे साथ मजाक कर रहे हो, मैं तो पहले ही पापोदय की सताई हुई हूँ, पर अरे रे ! पति द्वारा ही जिसका सम्मान न हो, उसकी अवज्ञा भला कौन नहीं करेगा ? हाय ! मुझ अभागिन को वह सुखद दिन कब प्राप्त होगा ? कब मुझे अपने प्राणेश्वर के दर्शन होंगे ?"

प्रहस्त ने करबद्ध हो निवेदन किया – "हे कल्याण रूपिणी ! हे पतिव्रता !! मेरा अपराध क्षमा करें। अब आपके अशुभ कर्मोदय का समापन हो गया है। आपके निश्छल प्रेम से प्रेरित हो आपके प्राणनाथ यहाँ पधारे हैं। वे आपके प्रति अपने इस व्यवहार से अत्यन्त लज्जित हैं तथा अब आपके प्रति उत्पन्न अनुराग से प्रसन्न भी हैं, उनकी प्रसन्नता से आपको आनंद न हो – यह असंभव है।"

यह बात सुनकर अंजना ने अपनी नजरें झुका लीं, तब वसन्तमाला ने प्रहस्त से कहा – "हे भद्र ! मेघ तो जब बरसे तभी श्रेष्ठ हैं। कुमार इनके महल में पधारे हैं – यह इनका महाभाग्य है, हमारा भी पुण्यरूप वृक्ष विकसित होकर फला है।"

अन्दर इसप्रकार चर्चा चल रही थी कि तभी कुमार भी वहीं आ पहुँचे। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु छलक रहे थे, मानो स्नेह और करुणारूपी सखी ही उन्हें यहाँ ले आयी थी।

पति को देखते ही यद्यपि अंजना अन्दर से प्रसन्न थी, तथापि कड़क स्वर में बोली – तुम कोई बहुरुपिया लगते हो, मेरे प्राणेश्वर तो आज ही युद्ध के लिए गये हैं, तुम उनकी अनुपस्थिति का अवसर पाकर मुझको भ्रमित नहीं कर सकते। तुम ही मेरे प्राणेश्वर हो – इसका क्या प्रमाण है ? तुम्हारा यह मित्र भी बहुरुपिया लगता है। कृपया मुझे माफ करो और यहाँ से शीघ्र प्रस्थान करो।

तब पवनकुमार ने विवाह से पूर्व और विवाह निरस्त कर वापिस आदित्यपुर जाने के आदेश तथा सबके समझाने-मनाने पर मान जाने की सम्पूर्ण घटना का सचित्र वर्णन कर अपने पवनकुमार होने का प्रमाण प्रस्तुत कर अपने अश्रुओं से महल का आंगन गीला कर दिया और क्षमा मांगने की मुद्रा में हाथ जोड़कर घुटने टेक दिये।

यह देखते हुए अंजना ने शीघ्र ही हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उनके चरणों में नमन करते हुए कहा – आपका स्थान यहाँ नहीं है और इसमें आपका काई दोष भी नहीं है – **यह सब मेरे ही पूर्वकर्मों के उदय से प्रेरित होकर ही किया गया है।**

तब कुमार ने अंजना को अपने हाथों से उठाकर सम्बोधित करते हुए कहा – ''हे देवी ! अब सर्व क्लेश एवं दुखों का परित्याग कर एवं मुझे माफ कर प्रसन्नता को धारण करो।'' – ऐसा कहकर उन्होंने उसे अपने निकट बैठाया, तब प्रहस्त और वसन्तमाला बाहर चले गये।

अपनी भूल के कारण लज्जित पवनकुमार ने बारम्बार अंजना सुन्दरी से कुशल समाचार पूछे और कहा – ''हे प्रिय ! मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा अनादर किया, इसके लिये तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अन्यकृत अपराध का तुम पर दोषारोपण किया, अब इन बातों का विस्मरण करो। अपने अपराध की क्षमा प्राप्ति हेतु मैं बारम्बार तुमसे

क्षमायाचना करता हूँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।'' – ऐसा कहते हुये पवनकुमार ने अंजना के प्रति बहुत स्नेह प्रदर्शित किया।

अपने प्राणनाथ का अपूर्व स्नेह देखकर महासती अंजना अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कहने लगी – ''हे नाथ ! मेरे प्रति इस तरह अनुनय-विनय करना आपके लिये शोभा नहीं देता। मेरा हृदय तो सदैव आपके ध्यान से संयुक्त ही था, आप तो सदा से ही मेरे हृदय में विराजमान थे। आपके द्वारा प्रदत्त अनादर भी मुझे मेरे पूर्वकर्मों की निर्जरा करने में सहायक ही प्रतीत होता था। अब तो आपने मुझ पर अपार कृपा कर अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित किया – इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है, मेरे तो सारे ही मनोरथ सिद्ध हो गये हैं। इसप्रकार दोनों में परस्पर स्नेहपूर्वक वार्तालाप एवं समागम के साथ रात्रि व्यतीत हुई।

प्रात:काल होने के कुछ समय पूर्व ही प्रहस्त ने आकर कुमार से कहा – ''हे मित्र ! अब चलने में शीघ्रता करो। अपनी प्राणप्रिया का विशेष सम्मान वापस आकर करना, अभी तो गुप्तरूप से ही वापस सेना में पहुँचना है। मानसरोवर पर अन्य राजागण आदि सभी साथ चलने के लिये तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे। इतना ही नहीं, स्वयं महाराज रावण भी अपने मंत्रियों से तुम्हारे आगमन के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। अत: अब विलम्ब करना किसी भी तरह उचित नहीं, आप शीघ्र ही अपनी प्राणप्रिया से विदा लेकर आओ।'' – इतना कहकर प्रहस्त तो वापस बाहर चला गया।

तब अंजना से विदा माँगते हुये पवनंजय ने कहा – ''हे प्रिये! अब मैं जा रहा हूँ, तुम चिन्ता मत करना, कुछ दिनों पश्चात् शीघ्र ही मैं वापस आ जाऊँगा, तब तक सानन्द रहना।''

तब अंजना संकोचपूर्वक हाथ जोड़कर इसप्रकार कहने लगी – ''हे प्राणनाथ ! यह तो सभी को ज्ञात है कि आज तक मुझपर आपकी

कृपादृष्टि नहीं रही, अत: मेरे हित के लिये आप माता-पिता से अपने आने का वृत्तान्त अवश्य कहते जायें, क्योंकि अभी मेरा ऋतु समय होने से मुझे गर्भधारण होने अधिकाधिक संभावना है।''

पवनकुमार ने कहा – ''हे प्रिये ! माता-पिता से तो मैं आज्ञा प्राप्त कर निकला हूँ, अत: अब उनके समीप जाकर यह बात कहते हुये मुझे लज्जा आती है। समस्त लोकजन भी मेरी इस चेष्टा को जानकर हँसी ही करेंगे, किन्तु तुम विश्वास रखो, तुम्हारे गर्भ के चिन्ह प्रगट हों, उससे पूर्व ही मैं वापस आ जाऊँगा, अत: तुम अपने चित्त को प्रसन्न रखना। फिर भी यदि कोई पूछे तो मेरे आगमन की प्रतीकरूप यह मेरे नाम की मुद्रिका एवं हाथ के कड़े रखो, आवश्यकता पड़ने पर ये मेरे आगमन की साक्षी देंगे और तुम्हें भी शान्ति रहेगी'' – इसप्रकार मुद्रिका एवं कड़े अंजना को सौंपकर कुमार ने विदा ली और वसन्तमाला को अंजना की भले प्रकार सेवा करने की आज्ञा देकर शीघ्रगामी विमान से दोनों मित्र मानसरोवर पर आ पहुँचे।

इस घटना के रहस्य का परिज्ञान कराते हुये गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं – ''हे श्रेणिक ! **इस लोक में उत्तम वस्तु के संयोग से किंचित् सुख का प्रतिभास भी होता है, परन्तु वह क्षणभंगुर है** और देहधारियों को पापोदय से होनेवाला दुख तो होता ही रहता है, परन्तु वह भी क्षणभंगुर ही है – अत: संयोगजन्य सुख-दुख दोनों ही क्षणभंगुर जानकर त्याज्य ही हैं तथा हर्ष-विषाद करने योग्य नहीं है। अत: हे प्राणियो ! **यह जिनधर्म ही जीवों को वास्तविक सुख का प्रदाता एवं दुखरूप अन्धकार का नाशक है,** अत: जिनधर्म रूपी सूर्य के प्रताप से मोहरूपी अन्धकार का नाश करो।''

निर्दोष अंजना पर मिथ्या दोषारोपण :–

समय पाकर सती अंजना के गर्भ के लक्षण प्रगट होने लगे,

उसका मुख इस तरह श्वेत हो गया, मानो गर्भ में स्थित हनुमान के उज्ज्वल यश को ही प्रगट कर रहा हो। ऐसे लक्षणों द्वारा सती अंजना को गर्भवती जानकर उसकी सास केतुमति पूछने लगी –

“अरी अंजना ! यह पाप कार्य तूने किसके साथ किया है ?”

अंजना ने अत्यन्त विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पति-आगमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त अपनी सास को सुना दिया, किन्तु निष्ठुर हृदयी केतुमति को उस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। अत: वह बिना विचारे ही क्रोधावेश में आकर कर्कशवचन कहने लगी –

“रे पापिनी ! मेरा पुत्र तो तुझसे इतना विरक्त था कि तेरी छाया तक नहीं देखना चाहता था, तेरी बात तक सुनना उसे पसंद न था, फिर वह तो हमसे आज्ञा प्राप्त कर रण-संग्राम में गया है, वह तेरे महल में कैसे आ गया ? रे निर्लज्ज ! तुझ पापिन को धिक्कार है। निंद्य-कर्म करके तूने हमारे उज्ज्वल वंश में कलंक लगा दिया है। क्या तेरी इस सखी वसंतमाला ने तुझे यही बुद्धि सुझायी है।”

सास की क्रूरतापूर्ण बातों को सुनकर अंजना ने कुमार द्वारा निशानी के रूप में प्रदान किये गये कड़े एवं मुद्रिका उन्हें दिखाई, तथापि उसकी सास के संदेह का निवारण न हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसने एक सेवक को आदेश दिया – “जाओ ! इस दुष्टा को इसकी सखी सहित रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर के समीप छोड़ आओ।”

इधर राजा प्रहलाद को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने रानी केतुमति से कहा कि तुमने इतना बड़ा निर्णय लेने से पूर्व हमें बताया होता तो कुछ और ही बात होती। अरे, हम पवन के आने तक इन्तजार तो कर ही सकते थे। पर अब व्यर्थ विवाद बढ़ाने से क्या... और वे इस विचार से संतोष धारण कर शान्त रह गये कि

जो होने योग्य था, वही हुआ, ...खैर, पिता के घर ही तो भेजा है।

केतुमति की आज्ञा पाकर क्रूर नामक सेवक ने आदेश का पालन करने हेतु दोनों को रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर की ओर प्रस्थान किया। उस समय भयाक्रान्त हो अंजना का सारा शरीर काँप रहा था, भय के कारण वह अपनी सास से और कुछ भी न कह सकी। उसकी दशा तो प्रचण्ड पवन के वेग से उखड़ी हुयी बेल की भांति एकदम निराश्रय हो गयी थी। वह बारम्बार अपने अशुभ कर्मोदय की निन्दा करती थी, उसका चित्त अत्यन्त अशान्त था।

शाम होते-होते रथ महेन्द्रनगर के समीप पहुँच गया। तब सेवक ने अंजना से कहा – "हे देवी ! माताजी ने आपको यहाँ तक ही छोड़ने की आज्ञा दी है, उन्हीं की आज्ञा से यह दुखरूप कार्य मुझे करना पड़ रहा है । मुझे क्षमा कर दें।" – ऐसा कहकर वह सेवक वापस महेन्द्र नगर की ओर बढ़ गया।

महापवित्र पतिव्रता अंजना सुन्दरी को अत्यन्त दुखी देखकर सूर्य भी मन्द पड़कर अस्त हो गया। रो-रोकर अंजना की आँखें लाल हो जाने से मानो पश्चिम दिशा भी लाल रंग में रंग गयी। धीरे-धीरे

रात्रि हुई और चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो गया। वन्य पशु-पक्षी भी मानो अंजना के दुख से दुखित हो कोलाहल करने लगे।

अपमानरूप महादुखसागर में डूबी अंजना भूख-प्यास आदि सब भूल गयी। भयभीत हो रुदन करने लगी, अंजना की इस दुखित अवस्था से द्रवित हो वसन्तमाला उसे धैर्य दिलाती हुई कहने लगी–

"हे बहिन ! तुम धैर्य धारण करो। तुम तो देव-गुरु-धर्म की परमभक्त हो, पवित्रात्मा हो, पतिव्रता हो, तुम्हारे ऊपर यह संकट मुझसे नहीं देखा जाता। हे सखी ! तू धैर्य रख, हिम्मत रख, अल्पकाल में ही तेरे दुखों का अन्त होगा, **धर्मात्मा जीव पर दीर्घकालीन संकट नहीं रह सकता**" – इसप्रकार धैर्य बँधाकर अंजना को सुलाने का प्रयास करने लगी, किन्तु उसकी आँखों में रंचमात्र भी निद्रा न थी, उसे एक रात्रि भी एक वर्ष के सदृश लगी।

वसंतमाला कभी उसे धैर्य दिलाती, कभी पैर दबाती – इस प्रकार जिस-तिस प्रकार उन्होंने रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल हो गया था, पक्षी चहुँ ओर कोलाहल करने लगे थे, सूर्यदेव उदित होने की तैयारी में थे। यहाँ दोनों सखियों ने सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठी भगवंतों का स्मरण किया। तत्पश्चात् विह्वलता पूर्वक अंजना सुन्दरी ने अपने पिता राजा महेन्द्र के महल की तरफ प्रस्थान किया, वसन्तमाला ने भी छाया की तरह अंजना का अनुसरण किया।

राजमहल के दरवाजे पर पहुँचकर जब दोनों ने अंदर प्रवेश करना चाहा तो द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया, क्योंकि दुख के कारण अंजना का रूप ही पूरा बदला हुआ लग रहा था और वह भी २२ वर्ष बाद देखने से द्वारपाल भी उसे नहीं पहिचान सका। रे संसार ! जो कभी राजकुमारी के रूप में उस महल में निराबाध विचरण करती थी, आज वही उसी महल में जाने पर द्वारपाल द्वारा रोकी गयी।

अरे रे ! **देखो तो सही, पुण्य-पाप की विचित्रता ! पूर्वभव में जब पुण्य का उदय था तब अपराध करके भी सभी संयोग अनुकूल थे और आज जब वर्तमान में पूर्ण निर्दोष है तब कैसे भयंकर दोषारोपण हो रहे हैं।** संसार में पुण्य-पाप का चक्र ऐसा ही चलता है, अत: सदा सावधान रहना चाहिए। अपने पूर्व दोषों के उदय में प्राप्त फलों का कारण किसी दूसरे को नहीं मानना चाहिए।

कुछ इसीप्रकार का विचार राजमहल के दरवाजे पर एक अपराधी की भाँति खड़े-खड़े अंजना भी कर रही है कि ''**हे प्रभु ! मुझे जिनधर्म के प्रभाव से ऐसी शक्ति प्रगट हो कि मैं किसी के दोष न देखूँ एवं सब जीवों में प्रभुत्व देख सकूँ।** अपने दुखों का कारण किसी अन्य को न ठहराऊँ।

जब वसंतमाला ने सम्पूर्ण वस्तुस्थिति से द्वारपाल को अवगत कराया, तब द्वारपाल सम्पूर्ण परिस्थिति को समझकर दरवाजे पर अन्य व्यक्ति को खड़ा करके स्वयं अंदर गया और राजा महेन्द्र से हाथ जोड़कर कहने लगा –

"हे महाराज ! राजकुमारी अंजना सखी वसंतमाला सहित अकेली ही पधारी हैं, और उनके साथ किसी प्रकार का ठाट-बाट भी नहीं है, वे पैदल ही आईं मालूम पड़ती हैं, उनकी सास ने उन पर कलंक लगाकर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया है, वे यहाँ बाहर द्वार पर ही खड़ी हैं एवं भीतर आने हेतु आपकी अनुमति चाहती हैं।"

पुत्री पर लगे कलंक की बात सुनकर राजा महेन्द्र को लज्जा आई और क्रोधित हो अपने पुत्र को आदेश दिया – "उस पापिनी को शीघ्र ही नगर से बाहर कर दो, उसकी बात सुनते हुए भी मेरे कान फटे जा रहे हैं।"

राजा महेन्द्र की क्रोधपूर्ण आज्ञा को सुनकर उनका अत्यन्त प्रिय सामन्त मनोत्साह आकर कहने लगा – "हे नाथ ! वसन्तमाला से सम्पूर्ण वस्तुस्थिति ज्ञात किये बिना यह आज्ञा देना उचित नहीं है। अपनी राजकुमारी अंजना उत्तम संस्कारों से संयुक्त एवं धर्मात्मा है, जबकि उसकी सास केतुमति अत्यन्त क्रूर है; इतना ही नहीं, वह तो जैनधर्म से परांगमुख एवं नास्तिकमत में प्रवीण है – यही कारण है कि उसने बिना विचारे अंजना पर दोषारोपण किया है। अंजना तो जैनधर्म की ज्ञाता होने के साथ ही श्रावक के व्रतों की धारक है, धर्माचरण में सदैव तत्पर रहती है। उसकी सास ने तो उसे निष्कासित कर ही दिया, अब यदि आप भी उसे शरण प्रदान नहीं करेंगे तो वह किसकी शरण अंगीकार करेगी।"

जिस तरह सिंह से भयभीत हिरण गहन वन की शरण ग्रहण करता है, उसी प्रकार सास द्वारा प्रताड़ित सरलहृदयी निष्कपट राजकुमारी अंजना आपकी शरण में आयी है, अभी तो वह दुखी एवं विह्वल हो रही है। अपमान रूप आताप से उसका अन्त:स्थल संतप्त है। इस समय भी यदि वह आपके आश्रित रहकर शान्ति प्राप्त नहीं करेगी तो

कहाँ शान्ति प्राप्त करेगी ? द्वारपाल द्वारा रोके जाने के कारण वह अत्यन्त लज्जित होकर राजद्वार पर मुँह ढँककर खड़ी-खड़ी बिलख रही है। आपके स्नेह के कारण वह सदा आपकी लाड़ली रही है और केतुमति की क्रूरता तो जगतप्रसिद्ध है। अत: हे राजन् ! आप दया करके शीघ्र ही निर्दोष राजकुमारी अंजना का महल में प्रवेश कराइये।''

इसप्रकार मनोत्साह सामंत ने अनेक प्रकार के न्यायपूर्ण वचन कहे, पर राजा ने उन पर किंचित् भी ध्यान नहीं दिया। जैसे कमल पत्र पर पानी नहीं ठहरता, उसीप्रकार राजा महेन्द्र के हृदय पर इन न्यायपूर्ण वचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

राजा महेन्द्र ने सामन्त से पुन: कहा – ''हे सामंत ! इसकी सखी वसन्तमाला तो सदा से ही इसके साथ ही रहती आयी है, अत: कदाचित् अंजना के स्नेहवश वह सत्य बात नहीं कह सकती, तब अपने को यथार्थता का परिज्ञान किसप्रकार संभव है ? अंजना का सतीत्व संदेहास्पद स्थिति में है, अत: उसे शीघ्र ही नगर के बाहर कर दो। यदि यह बात प्रगट हो गयी तो हमारे उज्ज्वल कुल में कलंक लग जायेगा। यह बात मैं पूर्व में भी अनेक बार सुन चुका हूँ कि वह सदा ही अपने पति की कृपाविहीन रही है। जब वह उसकी ओर देखता तक नहीं था, तब उससे गर्भोत्पत्ति किसप्रकार संभव है ? अत: निश्चित ही अंजना दोषी है, उसे मेरे राज्य में जो भी शरण देगा, वह मेरा शत्रु है।'' – इसप्रकार कहकर राजा ने अंजना को अपने राज्य की सीमा से बाहर करवा दिया।

यद्यपि अन्य अनेक परिजनों के हृदय में उसके प्रति दयाभाव थे, तथापि राजाज्ञा के भय से किसी ने उसे अपने यहाँ शरण देने की हिम्मत नहीं की। वह विचारने लगी – ''अरे रे ! जहाँ पिता ने ही मुझे क्रोधित हो तिरस्कृत कर दिया, वहाँ अन्य की तो बात ही क्या?

ये सब तो राजा के अधीन हैं'' – इसप्रकार सबके प्रति उदासीन होकर अंजना अपनी प्रिय सखी से कहने लगी –

''हे सखी ! यहाँ अपना कोई नहीं है। अपने अब वास्तविक रक्षक तो देव, गुरु और धर्म ही हैं, सदा उन्हीं का शरण है। अत: चलो ! अब तो हम वन में ही चलें, जहाँ वीतरागी संतों का वास है – ऐसे वन में आत्मसाधनार्थ निवास करेंगे।

चलो सखी अब वहाँ चलें, जहाँ मुनियों का वास।
आतम का अनुभव करें, वन में करें निवास।।

वनवासी अंजना :–

इसप्रकार विचारकर अंजना ने अपनी सखी सहित वन की तरफ प्रस्थान कर दिया, जब वह कंकड़-पत्थरों पर चलते-चलते थक गयी तो वहीं बैठकर रुदन करने लगी – ''हाय ! हाय !! मैं मन्दभाग्यनी पूर्व पापोदय के कारण महाकष्ट को प्राप्त हुई हूँ, क्या करूँ ? किसकी शरण में जाऊँ ? कौन करेगा मेरी रक्षा ? अरे ! माता ने भी मेरी रक्षा नहीं की, वह करती तब भी क्या करती ? वह भी तो हमारे पिता के आधीन हैं। पिताजी की तो मैं सदा से ही लाड़ली रही हूँ, वे तो मुझे प्यार से अपनी गोद में बिठाते थे, उन्होंने भी बिना परीक्षा के ही मेरा निरादर कर दिया। अरे ! जिस माता ने नौ माह तक मुझे अपनी कुक्षि में धारण किया, मेरा परिपालन किया वह भी मुझे आश्रय न दे सकी, न यह कह सकी कि इसके गुण-दोष का निर्णय तो करो।

अरे ! मेरे माता-पिता की ही यह स्थिति है, तब दूर के काका, नाना, प्रधान, सामंत एवं प्रजाजन तो कर ही क्या सकते हैं ? इसमें दूसरों का दोष भी क्या है ? मैं ही वर्तमान में दुर्भाग्यरूपी समुद्र में गिरी हुई हूँ। कौन जाने किन अशुभ कर्मोदय के कारण प्राणनाथ पधारे एवं यह दुर्दशा हुई। अरे ! प्राणनाथ जाते-जाते भी कह गये थे कि

तुम्हारे गर्भ के चिन्ह प्रगट होने के पूर्व ही मैं पहुँच जाऊँगा। हे नाथ! आपने क्षत्रिय होकर भी अपने इस वचन को क्यों नहीं निभाया ? अरे, सास ने भी बिना परीक्षा किये ही क्यों मेरा त्याग कर दिया, जिसके शील में संदेह हो उसकी परीक्षा के भी तो अनेक उपाय होते हैं। **अरे ! मैं किसको दोष दे रही हूँ, सबसे बड़ा दोष तो मेरा ही है। जब मेरा पापोदय ही ऐसा है, तब मुझे अन्य कोई शरण कैसे दे सकता है ?''**

इसप्रकार अंजना को विलाप करते देख, उसकी सखी भी धैर्य खो बैठी और रोने लगी – दोनों सखियों के करुण क्रन्दन को सुनकर उनके आस-पास स्थित हिरणियाँ भी आँसू बहाने लगी। इसी दशा में बहुत समय व्यतीत हो गया, तब महा-विचक्षण वसंतमाला अंजना को हृदय से लगाकर कहने लगी – **''हे सखी ! तुम शान्त हो जाओ। अधिक विलाप से क्या कार्यसिद्धि होनेवाली है। तुम तो जानती हो कि इस संसार में कोई भी पदार्थ इस जीव के लिये शरण प्रदाता नहीं है, माता-पिता भी शरण नहीं हैं।''**

सर्वज्ञ वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु ही सच्चे माता-पिता हैं और तुम्हारा निर्मल सम्यग्दर्शन ही तुम्हें शरणरूप है। इस असार-संसार में वही तुम्हारा वास्तविक रक्षक एवं एकमात्र सारभूत है। अत: हे सखी ! इस तत्त्वज्ञान के चिन्तवन से अपने चित्त को शान्त करो। पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग की दशायें तो बनती ही रहती हैं, उसमें हर्ष-शोक क्या करना ? स्वर्ग की अप्सरायें जिसे निरखती हैं – ऐसा स्वर्ग का देव भी पुण्य समाप्त होने पर दुख प्राप्त करता है। जीव सोचता कुछ है और होता कुछ है।

संयोग-वियोग में जीव का कुछ भी अधिकार नहीं है।

जगत के जीव अपने अभिप्रायानुसार पदार्थों के संयोग-वियोग के लिये प्रयत्नशील होते हैं, पर वस्तुत: संयोग-वियोग का कारण तो पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मोदय ही है। प्रियवस्तु का संयोग भी अशुभकर्मोदय के कारण वियोगरूप परिणमित हो जाता है और जिसकी कभी कल्पना भी न की हो – ऐसी वस्तु का संयोग शुभ कर्मोदय के फलानुसार सहज ही प्राप्त हो जाता है – यह सब तो कर्मोदय की विचित्रता है। **तुम्हारे द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मोदयानुसार प्राप्त संयोग-वियोग तुम्हारे टालने से नहीं टलेंगे, पर यदि हम चाहें तो उन संयोगों पर से अपना लक्ष्य हटा सकते हैं।**

अत: हे सखी ! तुम व्यर्थ क्लेश मत करो, खेद का परित्याग करके अपने मन को धैर्य से दृढ़ करो। तुम स्वयं विज्ञ हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ? जो मैं तुम्हें समझा रही हूँ, क्या वह सब तुम स्वयं नहीं जानती अर्थात् अवश्य जानती हो।'' – इसप्रकार वसंतमाला ने अत्यन्त स्नेह से अंजना को दिलासा दिलाते हुये उसके आँसू पोंछे और उसके शान्त होने पर वह फिर उससे कहने लगी –

''हे देवी ! यह स्थान आश्रय रहित है, अत: अब हम यहाँ से

शीघ्र चलें, उठो आगे चलते हैं और समीपवर्ती पहाड़ में कोई जीव-जन्तुओं एवं वन्यजीवों से रहित सुरक्षित गुफा की खोज करते हैं, जहाँ तुम्हारी प्रसूति निर्विघ्न हो सके, क्योंकि अब तुम्हारी प्रसूति का समय अत्यन्त निकट है, अत: हमें कुछ दिन अत्यन्त सावधानीपूर्वक रहना जरूरी है।''

सखी के आग्रह से अंजना कष्टपूर्वक उसके साथ चलने लगी। वह महा-वन हाथी और चीतों से भरा हुआ था, सिंह की गर्जना एवं अजगर की फुंकार से महाभंयकर प्रतीत होता था – ऐसे मातंग मालिनी नामक घोर वन में अंजना अपनी सखी के साथ धीमे-धीमे पैर रखती हुई बढ़ी जा रही थी।

यद्यपि वसंतमाला आकाशमार्ग से गमन करने में समर्थ थी, तथापि गर्भ-भार के कारण अंजना के चलने में असमर्थ होने से वह भी अंजना के प्रेम में बँधी उसकी छाया के समान उसके साथ-साथ ही चल रही थी।

वन की भयानकता का अवलोकन कर अंजना काँप रही थी, भ्रमित हो रही थी, तब वसंतमाला उसका हाथ पकड़कर कहने लगी– ''अरे मेरी बहन ! तू डर मत, धीरे-धीरे मेरे साथ चल।''

तब अंजना सखी के कंधे पर हाथ रखकर उसके साथ-साथ चल पड़ती है। पैरों में ककड़ एवं काँटे लग जाने के कारण खेदखिन्न हो विलाप करने लगती और बड़ी कठिनता से देह भी संभाले रखती, मार्ग में समागत पानी के झरनों को बड़ी कठिनाई से लांघती, बारम्बार विश्राम लेती, बारम्बार सखी धैर्य बँधाती।

इसप्रकार जैसे-तैसे दोनों सखियाँ पर्वत के समीप आ पहुँची। गुफा यद्यपि पास ही थी, पर अंजना तो वहाँ तक पहुँचने में भी असमर्थ थी, अत: आँसू बहाते हुये वहीं बैठ गयी और सखी से कहने लगी–

“हे सखी ! मैं तो अब थक गयी हूँ, एक कदम भी चलने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ।”

तब अत्यन्त चतुर वसंतमाला हाथ जोड़कर अत्यन्त मधुर स्वर में शान्तिप्रदायक वचनों से इसप्रकार कहने लगी – “हे सखी ! देखो ! अब गुफा नजदीक ही है, अत: कृपाकर यहाँ से उठो और वहाँ गुफा में निवास करो। यहाँ क्रूर जीवों का विचरण अत्यधिक मात्रा में है, अत: गर्भ की रक्षार्थ तुम्हीं इतनी हिम्मत तो जुटानी ही पड़ेगी।”

वन में अंजना को मुनिदर्शन का लाभ :–

सखी के वचन सुनकर एवं वन की भयंकरता से भयभीत अंजना अत्यन्त कष्टपूर्वक चलने के लिये उद्यमवंत हुई और सखी के हाथ का सहारा पाकर दोनों गुफा के द्वार तक पहुँच गईं।

बिना विचारे गुफा में प्रवेश करने से दोनों को ही भय पैदा होने लगा। इस कारण वे बाहर ही बैठ गईं और बाहर से ही सम्पूर्ण गुफा के भीतरी दृश्य का बारीकी से अवलोकन करने लगीं। गुफा के भीतर एक अद्‌भुत और आनंदकारी दृश्य पर उनकी दृष्टि पड़ते ही उनके आनन्द का भी पार न रहा। उन्होंने देखा कि अहो ! गुफा में एक महामुनिराज ध्यान में निमग्न हैं, वे मुनि चारणऋद्धि के धारक थे, उनका शरीर एकदम निश्चल था, उनकी मुद्रा सागर-सम गंभीर एवं परमशान्त थी, आँखें नासाग्र थी। आत्मा का जो स्वरूप जिनागम में प्रतिपादित किया गया है, उसी के ध्यान में मुनि तल्लीन थे, वे पर्वत-सम अडोल, आकाश-सम निर्मल एवं पवन की भांति निसंग थे। **अहो ! अप्रमत्त दशा में झूलते हुये वे मुनिराज सिद्धसमान निजात्मा की साधना में मग्न थे।**

ऐसे धीर, वीर, गंभीर, मुनिराज को देखते ही दोनों के हर्ष का पार ना रहा। अहा ! धन्य-धन्य मुनिराज !! – इसप्रकार कहती हुई

वे दोनों मुनिवर के समीप पहुँचीं और उनकी परमशान्त मुद्रा के दर्शनों को प्राप्त कर अपने सम्पूर्ण दुखों को भूल गईं। उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को नमस्कार किया, मुनिराज जैसे परम बांधव के दर्शन से उनके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। आँसू रुक

गये और नजरें मुनिराज के चरणों में ही स्थिर हो गईं – वे दोनों हाथ जोड़कर महाविनयपूर्वक इसप्रकार मुनिराज की स्तुति करने लगीं।

हे भगवन् ! हे कल्याणरूप ! हे उत्तमध्यान के धारक ! हे नाथ ! आप जैसे संत तो समस्त जीवों की कुशलता के कारण हैं, अत: आपकी कुशलता के बारे में क्या पूछना ? हे नाथ ! आप तो संसार का परित्याग कर आत्महित की साधना में मग्न हैं, आप महापराक्रमी, महाक्षमावान हैं, परमशान्ति के धारक हैं, उपशांतरस में झूलनेवाले हैं, मन और इन्द्रियों के विजेता हैं, आपका समागम जीवों के कल्याण का कारण है।

– इसप्रकार अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करके दोनों वहीं बैठ गयीं, मुनिवर के दर्शनों से दोनों का सम्पूर्ण कष्ट दूर हो गया।

मुनिराज का ध्यान पूर्ण होने पर दोनों ने उन्हें पुनः नमस्कार किया, तब स्वयमेव मुनिराज परमशान्त अमृतवचन कहने लगे –

“हे कल्याणरूपिणी ! रत्नत्रय धर्म के प्रसाद से हमें पूर्ण कुशलता है। हे पुत्री ! सभी जीवों को अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग प्राप्त होते हैं। देखो कर्मों की विचित्रता! यह राजा महेन्द्र की पुत्री वर्तमान में अपराध रहित होने पर भी परिजनों द्वारा तिरस्कृत की गयी है।”

बिना कहे ही सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लेने वाले उन धीर-वीर-गंभीर मुनिराज से वसंतमाला ने पूछा – “हे नाथ ! क्या कारण है कि इसके पति इतने वर्षों तक इससे उदास रहे और तत्पश्चात् इसमें अनुरक्त हुये ? और किस कारण से यह महासती वन में दुख को प्राप्त कर रही है तथा इसके गर्भ में कौन भाग्यहीन जीव स्थित है, जिसके जीवन के प्रति भी संदेह है। हे प्रभो ! कृपाकर इन प्रश्नों का उत्तर प्रदान कर हमारे संदेह का निवारण करें।”

वसंतमाला के प्रश्नों के प्रत्युत्तर स्वरूप विशेषज्ञान के धारक मुनिराज अमितगति सर्वप्रकार से यथार्थ वृत्तान्त कहने लगे; क्योंकि महापुरुष तो सहज ही परोपकारी होते हैं, अतः मुनिराज ने मधुरवाणी से कहा –

“हे पुत्री ! अंजना के गर्भ में स्थित जीव तद्भव मोक्षगामी महापुरुष है। अतः सर्वप्रथम तुम्हें उसी (हनुमान) के पूर्वभवों का ज्ञान कराता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तत्पश्चात् पूर्वभव के जिस पापाचरण के फलस्वरूप अंजना वर्तमान में दुखावस्था को प्राप्त हुई है, उसका वृत्तान्त कहूँगा।”

हनुमान के पूर्वभवों का वृत्तान्त :–

"जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मंदिरनगर में प्रियनन्दी नामक एक गृहस्थ के **दमयन्त नामक एक पुत्र** था। एकबार वह वसंतऋतु में अपने मित्रों के साथ वनक्रीड़ा के लिये वन में गया, वहाँ उसने एक मुनिराज को देखा जिनका आकाश ही वस्त्र था, तप ही धन था और वे निरंतर ध्यान एवं स्वाध्याय में उद्यमवंत थे – ऐसे परम वीतरागी मुनिराज को देखते ही दमयन्त अपनी मित्र मण्डली को छोड़कर श्री मुनिराज के समीप पहुँच गया, मुनिराज को नमस्कार कर उनसे धर्मश्रवण करने लगा। मुनिराज के तत्त्वोपदेश से उसने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की और श्रावक के व्रत एवं अनेक प्रकार के नियमों से सुशोभित हो घर आया।"

तत्पश्चात् एकबार उस कुमार ने दाता के सात गुण सहित मुनिराज को नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान दिया और अन्त समय में समाधिमरण पूर्वक देह का परित्याग कर **देवगति को प्राप्त** हुआ।

स्वर्ग की आयु पूर्णकर वह जम्बूद्वीप के मृगांक नगर में हरिचन्द्र राजा की प्रियंगुलक्ष्मी रानी के गर्भ से **सिंहचन्द्र नामक पुत्र** हुआ। वहाँ भी संतों की सेवा पूर्वक समाधिमरण ग्रहण कर स्वर्ग गया।

वहाँ से आयु पूर्ण कर भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत पर अहनपुर नगर में सुकंठराजा की कनकोदरी रानी के यहाँ **सिंहवाहन नामक पुत्र** हुआ जो महागुणवान एवं रूपवान था, उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया, तत्पश्चात् विमलनाथ स्वामी के समवशरण में आत्मज्ञान पूर्वक संसार से वैराग्य उत्पन्न होने पर राज्य का भार अपने पुत्र लक्ष्मीवाहन को सौंपकर लक्ष्मीतिलक मुनिराज के शिष्यत्व को अंगीकार कर लिया अर्थात् वीतराग देव कथित मुनिधर्म अंगीकार कर लिया और अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करके ज्ञानचेतना रूप हो गया, उसने

महान तप किया और निज स्वभाव में एकाग्रता के बल पर उस स्वभाव में ही स्थिरता की अभिवृद्धि का प्रयत्न करने लगा। तप के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गयीं, उसके शरीर से स्पर्शित पवन भी जीवों के अनेक रोगों को हर लेती थी। अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न वे मुनीश्वर निर्जरा के हेतु बाईस प्रकार के परीषहों को सहन करते। इसप्रकार अपनी आयु पूर्ण कर वे मुनिराज ज्योतिष्चक्र का उल्लंघन कर लांतव नामक सप्तम स्वर्ग में महान ऋद्धि से सुसम्पन्न देव हुये। देवगति में वैक्रियक शरीर होता है, अत: मनवांछित रूप बनाकर इच्छित स्थानों पर गमन सहज ही होता था। साथ ही स्वर्ग का अपार वैभव होने पर भी उस देव को तो मोक्षपद की ही भावना प्रवर्तती थी, अत: वह स्वर्ग सुख में 'जल से भिन्न कमलवत्' निवास करता था।

हे पुत्री ! वही देव स्वर्ग से चयकर अंजना के गर्भ में आया है, वह (हनुमान) चरमशरीरी है, अत: अब पुन: देह धारण नहीं करेगा, परम सुखरूप मोक्षदशा को प्राप्त करेगा – यह भव उसका अन्तिम भव है।

इस तरह हे कल्याण चेष्टावंती ! यह तो हुआ उस पुत्र का वृत्तान्त, जो अंजना के गर्भ में स्थित है। अब अंजना का वृत्तान्त सुनो, जिसके कारण इसे पति का वियोग एवं कुटुम्ब द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा।

अंजना के पूर्वभवों का वृत्तान्त :–

यद्यपि यह सत्य है कि अंजना का वर्तमान में कोई दोष दिखाई नहीं देता, परन्तु यह सत्य नहीं है कि अंजना का कोई दोष ही नहीं है; पूर्वभव में, जब अंजना भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर अरुणनगर के राजा सुकण्ठ की **पटरानी कनकोदरी** थी और हनुमान का जीव इसका सिंहवाहन नामक पुत्र था, तब इसकी एक लक्ष्मी नामक सौत

भी थी, जो सम्यग्दर्शन से सुशोभित भद्रपरिणामी धर्मात्मा थी, सच्चे देव-शास्त्र-गुरू की परमभक्त थी, उसने अपने महल के ही एक भाग में एक भव्य जिनालय का निर्माण कराके उसमें देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित करवा रखी थी, जिसकी वह प्रतिदिन बड़े ही भक्तिभाव से पूजा-अर्चना करती थी।

एकदिन किसी कारण से इस अंजना के जीव ने उस कनकोदरी के भव में सौत को परेशान करने के उद्देश्य से अपनी कषायपूर्ति के लिए जिनप्रतिमा को अपने स्थान से दूर करवा दिया था – यह उसका फल था। मिश्रकेशी सखी या पवनकुमार तो निमित्त मात्र थे। कर्म के उदय के प्रेरे थे। अत: हमें प्रतिक्षण सावधान रहना चाहिए, कि ''**क्षणिक कषायपूर्ति के विकल्प से अन्तहीन कष्ट को निमंत्रण देना कोई समझदारी नहीं है।**''

यहाँ **यह भी ध्यातव्य है कि अन्य सामान्य नारियों की तरह अंजना ने कोई विरोध नहीं किया, न घर छोड़ा, न आत्महत्या का विचार किया, न किसी को कोसा, न किसी को दोष दिया, मात्र अपने कर्मों का फल जानकर समताभाव से जीवन धर्माराधना के साथ बिताया, समय आने पर सब कुछ ठीक हो गया और हमारे लिए एक मिशाल कायम की, जिसपर हमें चलना चाहिए।**

भाग्य से तभी समयश्री नामक आर्यिका इसके घर पर आहार हेतु पधारीं और जिनप्रतिमा के अनादर की बात ज्ञात होने से उन्होंने अन्तराय जान आहार नहीं किया और इसे अज्ञानी समझकर अत्यन्त करुणापूर्वक उपदेश देने लगीं, क्योंकि साधु तो सभी का कल्याण ही चाहते हैं। अत: शील एवं संयम रूप आभूषण से अलंकृत समयश्री नामक आर्यिका भी अत्यन्त मधुर अनुपम वचनों के द्वारा पटरानी से कहने लगीं – ''अरे द्वेषहृदयी ! सुनो ! तुम रूपवती हो, राजा की

पटरानी हो और राजा का तुम्हारे प्रति विशेष स्नेह है **– यह सब तो पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है।**

यह जीव मोह के कारण चतुर्गति में परिभ्रमण करता हुआ महादुख का सेवन करता है। अनंतकाल में कभी महान पुण्योदय के कारण यह मनुष्यदेह प्राप्त करके भी जो सुकृत्य नहीं करता, वह तो हाथ में आये हुये रत्न को व्यर्थ ही खो देता है। अशुभ क्रियायें दुख की मूल हैं। अत: तू निज कल्याणार्थ श्रेष्ठ कार्यों में प्रवर्त – यही उत्तम है।

यह लोक तो महानिंद्य अनाचार से भरा हुआ है; जो स्वयं इस संसार से तिरते हैं, वे धर्मोपदेश द्वारा अन्य जीवों को भी तारने में निमित्त होते हैं, अत: उनके समान अन्य कोई उत्तम नहीं है, वे कृतार्थ हैं और ऐसे संत मुनियों के जो नाथ हैं, जो सर्वजगत के भी नाथ हैं – ऐसे धर्मचक्री श्री अरिहन्त देव हैं, जो उनके प्रतिबिम्ब का अविनय करते हैं, वे मूढ़ भव-भव में निकृष्ट गतियों को प्राप्त करते हैं और भयंकर दु:ख को भोगते हैं, जो कि वचन-अगोचर हैं।

यद्यपि श्री वीतराग देव तो राग-द्वेष विहीन हैं, वे न तो अपने सेवकों से प्रसन्न होते हैं और न अपने निन्दकों से द्वेष करते हैं – वे तो महामध्यस्थ वीतराग भाव को धारण करनेवाले हैं, तथापि जो जीव उनकी सेवा करता है, वह स्वर्ग एवं मोक्षसुख को प्राप्त होता है और उनकी निन्दा करनेवाला नरक-निगोद के दुखों को प्राप्त करता है, क्योंकि जीवों के सुख-दुख की उत्पत्ति अपने ही परिणामों से होती है। जैसे अग्नि इच्छा रहित है, तथापि उसके सेवन से शीत का निवारण होता है, उसी प्रकार जिनदेव इच्छारहित वीतराग हैं, तथापि उनके अर्चन-सेवन से स्वयमेव सुखोपलब्धि होती है और उनके अविनय से दुखोपलब्धि होती है।

हे पुत्री ! इस संसार में दृष्टिगोचर समस्त दुख पाप के ही फल हैं और समस्त सुख पुण्य के ही फल है। पूर्व पुण्योदय के फलस्वरूप तू राजा की पटरानी हुई है, महासम्पत्ति एवं अद्भुत कार्यक्षमता से युक्त पुत्ररत्न की प्राप्ति तुझे पूर्व पुण्योदय से हुई है, अत: इस अवसर में तुझे वह कार्य करना चाहिये, जिससे तुझे सुख प्राप्त हो। मेरे इन वचनों को सुनकर तू शीघ्र आत्मकल्याणार्थ तत्पर हो जा ! हे भव्य ! आँख होते हुये भी कुएँ में गिरने सदृश कार्य तेरे लिये शोभास्पद नहीं कहा जा सकता।

यदि इस अवसर में भी तूने ऐसे घृणास्पद कार्य का परित्याग नहीं किया तो तुझे नरक-निगोद के दुख प्राप्त करने पड़ेंगे।

देव-शास्त्र-गुरु का अविनय तो महादुख का कारण है, तेरे में विद्यमान इसप्रकार के दोष देखकर भी यदि मैं सम्बोधन न करूँ तो मुझे प्रमाद का दोष लगता है – इस कारण तेरे कल्याण के लिये यह धर्मोपदेश तुझे दिया है।''

– इसप्रकार आर्यिका श्री के उपदेश से रानी कनकोदरी नरक के दुखों से भयभीत हुई और उसने श्री जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को अत्यन्त बहुमान पूर्वक श्री जिनमन्दिर में वापिस विराजमान करवाया तथा महा उत्सवपूर्वक भगवान की पूजा का भव्य आयोजन किया। इसप्रकार सर्वज्ञदेव प्रणीत धर्म की आराधना करके वह पटरानी कनकोदरी स्वर्ग में गयी और स्वर्ग से चयकर राजा महेन्द्र की पुत्री तू अंजना हुई है।''

श्री मुनिराज कहते हैं – ''हे पुत्री ! तूने पूर्व पुण्योदय के कारण राजकुल में जन्म लिया और उत्तम वर को प्राप्त किया है, किन्तु तुमने जिनप्रतिमा को मन्दिर से बाहर निकलवा दिया था, उसी के फलस्वरूप तुम्हें पति का वियोग एवं कुटुम्बीजनों द्वारा किया गया तिरस्कार सहना

पड़ा। –इसप्रकार मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्वभव का वृत्तान्त श्रवणकर अंजना सुन्दरी को बहुत दुख हुआ। अत: वह अपने द्वारा किये गये पापाचरण की निन्दा करती हुई वह बारम्बार पश्चाताप करने लगी।

मुनिराज ने पुन: संबोधन करते हुए कहा– अरे ! तुमने अभी तो मात्र श्री जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अनादर करके पति वियोग का ही दुख भोगा है और जो अब पूरी तरह निर्जरित भी हो गया है। अब तेरे सुख के दिन आने का समय आ गया है; परन्तु इस लौकिक सुख-दुख से पार अतीन्द्रिय सुख को पाने की अभिलाषा है तो **जो अनादिकाल से अपने चैतन्यदेव का तिरस्कार किया है, जिसका फल चार गति चौरासी लाख योनियों के दुखरूप अनंत संसार है। उस चैतन्यदेव की शरण में जा और भव-भव के दुखों का अंत कर।**

– तत्त्व का सत्य उपदेश धारण कर अंजना ने सावधान हो अपने चैतन्यदेव की प्रतीति कर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को उत्पन्न कर अपने अनंतभवों पर विराम लगा दिया और कुछ ही समय में जगत के जीवों को मोक्षमार्ग प्रशस्त करनेवाले तद्भव मोक्षगामी पुत्ररत्न को उत्पन्न कर जगतजननी बननेवाली हैं।

मुनिश्री के अमृतमयी धर्मामृत वचनों को सुनकर दोनों सखियों को महान हर्ष हुआ, उनके नेत्र आनन्दाश्रु बरसने लगे।

“अहो ! इस घनघोर वन में आप धर्मपिता हमें प्राप्त हुये, आपके दर्शन से हमारे दुख दूर हुये, हे प्रभो ! आप ही परमशरणभूत हैं।” – इसप्रकार महाविनयपूर्वक स्तुति करती हुई दोनों सखियाँ बारम्बार मुनिवर के चरणों में नमन करने लगीं। अहो ! जगत से उदास पर जगत के तारणहार – ऐसे वे मुनिराज तो कुछ समय के बाद ही आकाशमार्ग से गमन कर गये।

अंजना अपने पूर्वभव के प्रसंगों से परिचित होकर पाप से भयभीत होती हुई धर्म में तत्पर हो गयी। 'मुनिराज के निवास से यह गुफा पावन हुई है।' – ऐसा विचार कर दोनों सखियाँ वहीं रहने लगीं एवं पुत्र-जन्म का इन्तजार करने लगीं।

इसप्रकार सखी सहित गुफा में निवास कर रही अंजना सती, धर्म के चिन्तवन, वैराग्य-भावनाओं के मनन एवं देव-गुरु-धर्म की भक्तिपूर्वक समय व्यतीत करने लगी तथा वसंतमाला विद्याबल से खान-पानादि की समुचित व्यवस्था करती रही।

उसी गुफा में तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा स्थापित थी।

अत: दोनों सखियाँ भक्तिपूर्वक उत्तम द्रव्यों से जिनदेव की पूजन करतीं, साथ ही वसंतमाला सदा अनेक प्रकार के विनोद से अंजना को प्रसन्न रखती। बस ! दोनों के अन्तस्थल में अब एकमात्र सदा यही विकल्प रहता कि प्रसूति सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाये।

दिन अस्त हुआ, सांझ का लाल रंग ऐसा छा गया मानो, अभी क्रोध से युक्त सिंह आयेगा और थोड़ी ही देर में संकट उपस्थित होगा

– ऐसी सूचना देती हुई अंधियारी रात्रि भी आ पहुँची। भययुक्त पशु-पक्षी शान्त हो गये, कभी-कभी अचानक सियारों की चीखें सुनायी देतीं, मानो वे आनेवाले संकट की सूचना ही दे रहे हों।

गंधर्व द्वारा संकट-निवारण :–

– ऐसी अंधियारी रात्रि में वे दोनों सखियाँ उस गुफा में बैठी वार्तालाप कर रही थीं कि तभी भयंकर गर्जना करता हुआ एक सिंह गुफा द्वार पर आ पहुँचा। उसकी गर्जना से सारी गुफा तो ऐसे गूँज

उठी, मानो भयाक्रांत पर्वत ही रुदन करने लगा हो।

सिंह की भयानक गर्जना सुनकर अंजना ने प्रतिज्ञा की कि इस उपसर्गकाल में मेरा अनशन व्रत है। सखी वसंतमाला अंजना की रक्षा करने के लिये अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक हाथ में तलवार लेकर आस-पास घूमने लगी, दोनों सखियाँ भयाक्रांत हो गईं।

अंजना तो जिनदेव के ध्यान में निमग्न थी और वसंतमाला सारस की भांति इस तरह विलाप कर रही थी – "हाय अंजना! पहले तो पति-वियोग से तू दुखी हुई, किसी प्रकार पति का समागम हुआ और गर्भ

रहा तो सास ने बिना विचारे तुझ पर मिथ्या कलंक लगाकर घर से निष्कासित कर दिया। माता-पिता ने भी आश्रय देने से इन्कार कर दिया। अत: महाभयंकर वन में शरण प्राप्त की, यहाँ महान पुण्योदय से मुनिराज के दर्शन प्राप्त हुये, मुनिवर ने पूर्वभव बताकर धैर्य बँधाया, धर्मामृत पान कराया एवं गमन कर गये। प्रसूति के लिये तू इस गुफा में आयी तो अब यह सिंह भक्षण करने के लिये तैयार खड़ा है। हाय ! हाय !! अब इस राजपुत्री को इस निर्जन वन में कौन बचायेगा? अरे ! इस वन के देवताओ ! दया करके इसकी रक्षा करो।

अरे, मुनिराज ने तो कहा था कि अंजना अब तेरे सर्व दुख दूर होंगे, तब क्या मुनिराज के वचन भी अन्यथा हो सकते हैं ? नहीं नहीं, मुनिराज के वचन कभी भी अन्यथा नहीं हो सकते।"

तभी उस गुफा में निवास कर रहे मणिचूलनामक गंधर्वदेव की रत्नचूला नामक स्त्री ने उससे कहा – "हे देव ! देखो ! ये दोनों स्त्रियाँ सिंह के भय से अत्यन्त विह्वल हो रही हैं, ये दोनों धर्मात्मा हैं। अत: इनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।"

गन्धर्वदेव का हृदय भी दया से द्रवित हो गया, अत: उसने शीघ्र ही विक्रिया द्वारा अष्टापद का रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् सिंह और अष्टापद के युद्ध की भयंकर गर्जना चहुँ ओर फैलने लगी।

इधर गुफा द्वार से बाहर अष्टापदरूपधारी गंधर्वदेव ने अपने पंजों के प्रहार से सिंह को घायल करके भगा दिया और स्वयं अपने स्थान पर चला गया – इसप्रकार एक ही क्षण में सिंह एवं अष्टापद दोनों ही विलीन हो गये।

झूले की तरह कभी अंजना के पास जाती तो कभी गुफा द्वार पर आती हुई वसन्तमाला को सिंह और अष्टापद के युद्ध का स्वप्नवत् विचित्र चरित्र देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। संकट दूर हुआ जानकर

वह गुफा में अंजना सुन्दरी के समीप आयी और अत्यन्त कोमल हाथ फैरते हुए उसे प्रसन्नता से उसे सहलाते हुए कहने लगी – जिसके गर्भ में तद्भव मोक्षगामी जीव पल रहा हो, भला उसे कौन हानि पहुँचा सकता है। संकट टला जानकर अंजना भी आश्वस्त हो प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहने लगी – भय तो मुझे भी बहुत लग रहा था, पर मुनिराज के वचनों को याद कर समता भी बनी हुई थी।

अब भी उन्हें नींद नहीं आ रही थी, अत: वे गुफा में ही बैठी बैठी कभी तो धर्मकथा करतीं, तो कभी भगवान की भक्ति करतीं, तो कभी मुनिराज को याद करतीं तो कभी याद करती कुटुम्बीजनों के बर्ताव को – इसप्रकार अर्धरात्रि व्यतीत हो गयी....।

तभी अचानक उनके कान में संगीत का अत्यन्त मधुर स्वर सुनायी देने लगा। ऐसी मध्यरात्रि में सुनसान गुफा में जिनेन्द्र भक्ति की मधुर झंकार को सुनकर दोनों का आश्चर्यचकित होना स्वभाविक ही था। वे दोनों एकाग्रचित्त से उस मधुर भक्तिरस का पान करने लगीं।

जैसे गरुड़ सर्प को भगा देता है, इसी प्रकार अष्टापद रूपधारी गन्धर्व भी सिंह को भगाकर रात्रि के शांत वातावरण में आनन्दपूर्वक वीणा बजाकर श्री जिनेन्द्रदेव का गुणगान कर रहा था। गंधर्वदेव गान विद्या में विशेष प्रवीण होते हैं।

गंधर्वदेव द्वारा की गई भगवान की स्तुति का सार इसप्रकार है –

“मैं सर्वज्ञ परमात्मा श्री अरिहन्तदेव को अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जो देवों के द्वारा भी पूज्य हैं – ऐसे देवाधिदेव श्री मुनिसुव्रतनाथ के चरणयुगल में अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। हे भगवन् ! आप त्रिभुवन में श्रेष्ठ मुक्तिमार्ग के नेता हैं। आपके चरणों के नख की प्रभा से इन्द्र के मुकुट के रत्न प्रकाशित होते हैं। हे सर्वज्ञदेव ! आप ही जीवों को परम शरणभूत हैं।”

इसप्रकार जिनेन्द्रप्रभु की अद्भुत भक्ति सुनकर दोनों सखियों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपूर्व राग सुनने के कारण उन्हें विस्मय भी हुआ। गीत की प्रशंसा करती हुई वे कहने लगीं – "धन्य है यह गीत, लगता है जिनेन्द्रदेव के किसी अनन्य भक्त ने यह गीत गाया है, जिसे सुनकर हमारा हृदय रोमांचित हो गया है।"

वसंतमाला अंजना से कहने लगी – "हे सखी ! अवश्य ही यहाँ किसी दयावान देव का निवास है, जिसने पहले तो अष्टापद का रूप धारण कर सिंह को भगाकर हमारी रक्षा की और फिर आपके आनन्द के लिये यह मनोहर गीत गाया है।

हे देवी ! हे शीलवती !! तुम्हारी तो सभी रक्षा करते हैं। शीलवंत धर्मात्माओं के तो भयंकर वन में देव भी मित्र बन जाते हैं। – इस संकट के निवारण से यह स्पष्ट विदित होता है। शीघ्र ही तुम्हें अपने पति का समागम प्राप्त होगा और महापराक्रमी पुत्ररत्न प्राप्त होगा। मुनिराज के वचन कदापि अन्यथा नहीं हो सकते।"

– इसप्रकार चर्चा-वार्ता से दोनों ने रात्रि व्यतीत की। प्रात:काल होने पर दोनों सखियों ने उठकर सर्वप्रथम गुफा में विराजमान श्री मुनिसुव्रतनाथ के जिनबिम्ब की अतिशय भक्तिपूर्वक पूजा-वन्दना की, तत्पश्चात् अंजना के चित्त को प्रसन्न करती हुई वसन्तमाला कहने लगी – "हे देवी ! देखो तो तुम्हारे यहाँ आने से पर्वत एवं वन भी हर्षित हो उठे हैं – यही कारण है कि झरनों के कल-कल नाद से वे भी मुस्कुरा रहे हैं, वन के वृक्ष नम्रीभूत होकर अपने फल मानो तुम्हें ही समर्पित कर रहे हैं। मोर, तोता एवं मैना मानो सुन्दर स्वर में तुम्हारा ही अभिनन्दन कर रहे हैं।

अत: हे कल्याणरूपिणी ! हे पुण्यवंती ! तुम चिन्ता का परित्याग कर प्रसन्न रहो, यहाँ अपने को किसी भी प्रकार से भयभीत नहीं होना

चाहिये, देव भी तुम्हारी सेवार्थ तत्पर हैं। तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा शील निर्दोष है – यही कारण है कि ये पक्षी भी तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं। तुम्हारे यहाँ निवास से सारा ही वन प्रफुल्लित हो उठा है, देखो ! देखो !! स्वयं सूर्य भी तुम्हारे दर्शनों के लिये उदित हो रहा है।''

वसंतमाला की प्रसन्नतावर्धक वार्ता का श्रवण कर अंजना कहने लगी – ''हे सखी ! जब तू मेरे साथ है तो सारा कुटुम्ब ही मेरे साथ है, तेरे प्रसाद से तो ये वन भी मेरे लिये नगर समान है। सच्चा बन्धु तो वही है, जो संकटकालीन परिस्थिति में सहायता करे। दुखदातार बन्धु नहीं हो सकता। हे सखी ! इस संकटकालीन समय में तेरे सामीप्य से मेरा सर्व दुख विस्मृत हो गया है।''

– इसप्रकार प्रेमपूर्वक वार्तालाप करती हुई वे दोनों सखियाँ उस गुफा में निवास कर रही थीं। दोनों मुनिसुव्रतनाथ प्रभु की प्रतिदिन पूजा-अर्चना करतीं और वसंतमाला विद्याबल से खान-पान की सब सामग्री एकत्रित कर विधिपूर्वक भोजन बनाती थी। गुफावासी गंधर्वदेव उनकी हर प्रकार रक्षा करता था और बारम्बार विविध रागों से जिनदेव की स्तुतियाँ सुनाता था। इतना ही नहीं, वनवासी हिरणादि पशु भी उन दोनों सखियों से हिल-मिल गये थे।

इसप्रकार दोनों का समय व्यतीत हो रहा था।

हनुमान का जन्म :–

इसीप्रकार कितने ही दिन व्यतीत हो गये। अंजना के प्रसूति का समय निकट था, अत: वह अपनी सखी से कहने लगी – ''हे सखी ! मैं कुछ व्याकुलता अनुभव कर रही हूँ।''

उसकी बात सुनकर वसंतमाला ने कहा – ''हे देवी ! तुम्हारे प्रसूति का समय निकट है, अत: तुम चिन्ताओं का परित्याग कर

आनंदित होओ। – ऐसा कहकर उसने अंजना के लिये कोमल शैय्या का निर्माण कर दिया।

जैसे पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है, उसी तरह अंजना ने सूर्यसम तेजस्वी बालक को जन्म दिया, उसका जन्म होते ही गुफा में व्याप्त अंधकार विलय हो गया और वहाँ प्रकाश का साम्राज्य हो गया। ऐसा लगता था मानो वह गुफा ही सुवर्ण-निर्मित हो।

अपने पुत्र को छाती से लगाकर दीनतापूर्ण स्वर में अंजना कहने लगी – ''हे पुत्र ! इस गहन वन में तू उत्पन्न हुआ है, अत: मैं तेरा जन्मोत्सव किस प्रकार मनाऊँ ? यदि तेरा जन्म तेरे दादा या नाना के यहाँ होता तो निश्चित ही उत्साहपूर्ण तेरा जन्मोत्सव मनाया जाता। अहो ! तेरे मुखरूपी चन्द्र को देखकर कौन आनंदित न होता ? किन्तु मैं भाग्यहीन, सर्ववस्तु विहीन हूँ, अत: जन्मोत्सव का आयोजन करने में असमर्थ हूँ। हे पुत्र ! अभी तो मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तू दीर्घायु हो, कारण कि जीवों को अन्य वस्तुओं की प्राप्ति की अपेक्षा दीर्घायु होना दुर्लभ है।

हे पुत्र ! यदि तू है तो मेरे पास सबकुछ है। इस महान गहन वन में भी मैं जीवित हूँ – यह भी तेरा ही पुण्य प्रताप है।''

अंजना के इन वचनों को सुनकर वसंतमाला कहने लगी – ''हे देवी ! तुम प्रसन्न होओ। तुम कल्याणमयी हो, तभी तो ऐसे महान पुत्ररत्न की प्राप्ति तुम्हें हुई है। तेरा पुत्र सुन्दर लक्षणों से सुशोभित है, यह महाऋद्धि का धारक होगा।

मुनिराज का वह वचन याद करके कि 'यह पुत्र चरमशरीरी है' – इस पुत्र के जन्म देने से तो निश्चित ही तेरी कोख पवित्र हो गयी है। यह बालक तेजस्वी है, इसके प्रभाव से सब अच्छा ही होगा, अत: तू व्यर्थ चिन्ता का परित्याग कर एवं पुत्र का अवलोकन करके

आनंदित हो। देख ! यह वन भी तेरे पुत्र का जन्मोत्सव मना रहा है। वृक्ष एवं पुष्प भी पुलकित होकर मुस्करा रहे हैं, बेलें हर्ष में डोल रही हैं, मयूर नृत्य एवं भँवरे मधुर गुँजार कर रहे हैं, हिरण भी वात्सल्य से तेरे पुत्र का अवलोकन कर रहे हैं – इसप्रकार तेरे पुत्र के जन्मोत्सव से तो सारा वन ही प्रफुल्लित हो गया है।''

दोनों सखियों में इसप्रकार परस्पर वार्तालाप चल ही रहा था कि तभी वसन्तमाला ने आकाशमार्ग से सूर्यसम तेजस्वी एक विमान आता हुआ देखा। इसकी सूचना उसने अपनी स्वामिनी अंजना को दी। विमान दृष्टिगोचर होते ही अंजना भयभीत हो शंकाशील हो गयी और जोर से पुकारने लगी – अरे ! यह कोई शत्रु मेरे पुत्र का अपहरण करने आया है या कोई मेरा हितैषी है ?''

अंजना की उक्त पुकार सुनकर विमान में विद्यमान विद्याधर को दया उत्पन्न हो गयी, अत: उसने अपने विमान को गुफा द्वार के समीप उतार दिया और विनयपूर्वक पत्नी सहित गुफा में प्रवेश किया।

निर्मल चित्तधारी विद्याधर को गुफा में प्रवेश करते देखकर वसंतमाला ने उस दम्पति का यथोचित आदर-सत्कार किया। कुछ देर तक तो विद्याधर मौनपूर्वक बैठा रहा, तत्पश्चात् गंभीरवाणी में उसने वसंतमाला से पूछा – ''हे बहिन ! सुमर्यादाधारक यह स्त्री कौन है ? इसके पिता एवं पति का क्या परिचय है ? यह तो किसी बड़े घर की लगती है, फिर भी कुटुम्बीजनों से बिछुड़ कर इसके वन-निवास का क्या कारण है ? जगत में राग-द्वेष रहित उत्तम जीवों के भी पूर्वकर्मोदय के फलानुसार बिना कारण जीव शत्रु बन जाते हैं। यह तो धर्मात्मा ज्ञात होती है, इसकी ऐसी स्थिति कैसे हुई ?''

विद्याधर द्वारा स्नेहपूर्वक पूछे गये प्रश्नों के प्रत्युत्तरस्वरूप वसंतमाला दुख से रुँधे हुये स्वर में कहने लगी – ''हे महानुभाव !

आपके वचनों द्वारा ही आपके मन की पवित्रता ज्ञात हो रही है। जैसे दाह-नाशक चंदन वृक्ष की छाया भी प्रिय प्रतीत होती है, इसी तरह आप जैसे गुणवान पुरुषों की छाया भी हृदय के भाव प्रगट करने का स्थान है। आप जैसे महानुभाव के समक्ष दुख निरूपण करने से दुख निवृत्त हो जाता है, आप दुख-हर्ता हैं, कारण कि आपदाओं में सहायता करना तो सज्जनों का स्वभाव ही है। आपने हमारा दुख सुनने की अभिलाषा व्यक्त की है, अतः मैं सुनाती हूँ, आप ध्यान पूर्वक सुनिये – इसका नाम अंजना है, यह भूतल पर प्रसिद्ध राजा महेन्द्र की पुत्री है एवं राजा प्रहलाद के पुत्र पवनंजय इसके पति हैं।''

तत्पश्चात् वसंतमाला ने अंजना के साथ घटित प्रिय-अप्रिय समस्त प्रसंगों का ज्यों का त्यों वर्णन करते हुये कहा –

''हे महानुभाव ! यह अंजना सर्वदोष परिमुक्त, सती, शीलवंती एवं निर्विकार है, धर्मात्मा है। यहाँ रहकर मैं भी इसकी सेवा करती हूँ, मैं इसकी आज्ञाकारिणी सेविका एवं विश्वासपात्र सखी हूँ, मुझ पर इसकी विशेष कृपा-दृष्टि है। आज ही गुफा में इसने बालक को जन्म दिया है। अनेक भयों से मुक्त इस वन में कौन जाने किस तरह इसे सुख प्राप्त होगा ? – हे राजन् ! यह हमारे दुख का संक्षिप्त वृत्तान्त है। सम्पूर्ण दुख तो अकथनीय है।''– इसप्रकार अंजना के दुखरूपी आताप से पिघलकर वसंतमाला के हृदय में स्थित स्नेह, वचनों द्वारा अभिव्यक्त हो गया।

वसंतमाला द्वारा कथित अंजना की करुण-कथा सुनकर विद्याधर राजा अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहने लगा – ''हे भव्यात्मा ! मैं हनुमत द्वीप का राजा प्रतिसूर्य हूँ और यह अंजना मेरी भानजी (बहिन की पुत्री) है। बहुत दिनों पश्चात् मैंने इसे देखा है, अतः पहिचान न सका''

– ऐसा कहकर राजा प्रतिसूर्य अंजना के बाल्यावस्था का सम्पूर्ण

वृत्तान्त गद्गद्वाणी से सुनाते हुये अश्रुपात करने लगे, अंजना भी उन्हें अपना मामा समझकर रुदन करने लगी – ऐसा लगता था, मानो आँसुओं के बहाने उसका सम्पूर्ण दुख ही बह रहा हो। यह लौकिक रीति है कि दुख प्रसंग में अपने हितैषी को देखते ही अनायास रोना आ जाता है – यही स्थिति उस समय उस गुफा में हो रही थी।

अंजना रुदन कर रही थी तो मामा-मामी एवं वसंतमाला के नयन भी अश्रुओं की धारा बहा रहे थे। उन चारों के रुदन से गुफा इस तरह गूँज रही थी मानो पर्वत एवं झरने भी रुदन कर रहे हों। रुदन की ध्वनि से सारा वन गूँज उठा था – ऐसा लगता था मानो सारा वन ही रुदन कर रहा हो और तो और वनवासी हिरणादि पशु भी उनके रुदन में शामिल हो गये थे।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य शान्त हुये और उन्होंने अंजना को भी शान्त किया, उस समय वन भी शान्त हो गया मानो वह भी उनकी वार्ता सुनने को उत्साहित हो।

सर्वप्रथम तो अंजना प्रतिसूर्य की रानी अर्थात् अपनी मामी के साथ बातचीत करने लगी। महापुरुषों की यही विशेषता है कि वे दुख में भी अपने कर्तव्य से चलित नहीं होते। तत्पश्चात् अंजना अपने मामा से कहने लगी – ‘‘हे पूज्य ! आप इस पुत्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्योतिषियों से पूछें।’’,

तब अपने साथ समागत ज्योतिषी से राजा ने वृत्तान्त जानने की इच्छा जाहिर की तो उसके उत्तर में ज्योतिषी कहने लगा – ‘‘इस बालक का जन्म समय क्या है – यह बताओ ?’’

‘‘आज ही अर्द्धरात्रि व्यतीत होने के पश्चात् इसका जन्म हुआ है’’ – वसंतमाला ने कहा।

तब लग्न स्थापित कर एवं बालक के शुभलक्षणों को पहिचानकर

ज्योतिषी ने कहा – ''यह बालक तो तद्भव मोक्षगामी है। यह इसका अंतिम जन्म है अर्थात् अब यह दूसरा जन्म धारण नहीं करेगा। इसकी जन्म तिथि फाल्गुन कृष्णा अष्टमी तथा नक्षत्र श्रावण है और सूर्यचन्द्रादि समस्त गृह उत्तम स्थानों में सुस्थित हैं। बलवान हैं, ब्रह्मयोग है तथा शुभ मुहूर्त है; अत: निश्चित ही यह बालक अद्भुत राज्य प्राप्त करेगा, साथ ही मुक्तिप्रदाता योगीन्द्रपद भी यह प्राप्त करेगा – इसप्रकार राजेन्द्र एवं योगीन्द्र दोनों पद प्राप्त कर अविनाशी सुख को प्राप्त करेगा।''

ज्योतिषी की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य ने अंजना से कहा – ''हे पुत्री ! चलो अब हम सब अपने राज्य हनुमत द्वीप के लिये प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँच कर इस पुत्र के जन्मोत्सव का विशाल आयोजन करना है।''

अंजना ने राजा मामा के कथन को स्वीकार कर सर्वप्रथम गुफा में विराजमान भगवान जिनेन्द्र की भावपूर्ण वन्दना की, पश्चात् पुत्र को गोद में लिया, तत्पश्चात् गुफा के अधिपति गंधर्वदेव से क्षमायाचना कर प्रतिसूर्य के परिवार के साथ गुफा द्वार से बाहर निकल आयी और विमान के समीप पहुँचकर खड़ी हो गयी, उसे जाते देखकर मानो सम्पूर्ण वन ही उदास हो गया, वन के पशु हिरणादि भी भीगी पलकों से विदा करते हुये टुकुर-टुकुर उसे निहारने लगे....गुफा, वन एवं पशुओं पर एकबार स्नेहभरी दृष्टि डालकर सखी सहित अंजना विमान में बैठ गई।

विमान आकाशमार्ग से जा रहा है। अंजना सुन्दरी की गोद में बालक खेल रहा है, सभी विनोद कर रहे हैं कि तभी अचानक.... कुतूहल से हँसते-हँसते वह बालक माता की गोद से उछलकर नीचे पर्वत पर जा गिरा। बालक के गिरते ही उसकी माता (अंजना)

हाहाकार करने लगी। राजा प्रतिसूर्य ने तत्काल विमान को पृथ्वी पर उतार दिया।

अंजना के दीनतापूर्वक विलाप के स्वर सुनकर जानवरों के हृदय भी करुणा से द्रवित हो उठे – "हे पुत्र ! यह क्या हुआ ? अरे ! यह भाग्य का खेल भी कितना निराला है, पहले तो मुझे रत्नों से परिपूर्ण निधान बताया और पश्चात् मेरे रत्न को हरण कर लिया। हा ! कुटुम्ब के वियोग से व्याकुलित मुझ दुखिया का यह पुत्र ही

तो एकमात्र सहारा था, यह भी मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझसे छीन लिया। हाय पुत्र ! तेरे बिना अब मैं क्या करूँगी ?"

इसप्रकार इधर तो अंजना विलाप कर रही थी और उधर पुत्र हनुमान जिस चट्टान-शिला पर गिरा था, उस चट्टान-शिला के हजारों टुकड़े हो गये थे, जिसकी भयंकर आवाज को सुनकर राजा प्रतिसूर्य ने वहाँ जाकर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'क्या देखा उन्होंने ?' उन्होंने देखा कि बालक तो एक शिला पर आनन्द से मुँह में अपना अँगूठा लेकर स्वतः ही क्रीड़ा कर रहा है, मुख पर मुस्कान की रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है, अकेला पड़ा-पड़ा शोभित हो रहा है। अरे ! जो चरमशरीरी हो, उसको क्या कोई हानि हो सकती है ? और जो कामदेव पद का धारक है, उसका शरीर तो सुन्दरता में अनुपम होगा ही, उसकी उपमा किससे दी जावे ?

दूर से ही बालक की ऐसी दशा देखकर राजा प्रतिसूर्य को अपूर्व आनन्द हुआ। जिसने अपने प्रताप से बाल्य अवस्था में ही पर्वत के खण्ड-खण्ड कर दिये, वह अपने तप के बल से इसी भव में कर्मों के पर्वतों का भेत्ता क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य ही होगा। जिसका आत्मा धर्म से युक्त है और जिसका शरीर तेजस्वी है – ऐसे निर्दोष बालक को आनन्द से क्रीड़ा करते हुये देखकर अंजना को भी अपूर्व आनन्द हुआ। वह अत्यन्त स्नेहपूर्वक बालक को उठाकर छाती से लगाते हुए उसके सिर का चुंबन करने लगी।

इस आश्चर्यकारी दृश्य से हर्षित हो राजा प्रतिसूर्य अंजना से कहने लगे – "हे पुत्री ! तुम्हारा यह पुत्र उत्तम संस्थान एवं उत्तम संहनन का धारक है, बज्रकाय है, तभी तो इसके गिरने से पर्वत के खण्ड-खण्ड हो गये। जब बाल्यावस्था में ही इसकी शक्ति देवों से अधिक है, तब यौवनावस्था में इसका पराक्रम कितना होगा ? अब यह तो निश्चित ही है कि यह जीव चरमशरीरी है, तद्भव मोक्षगामी है, पुनः देह धारण का कलंक इसको नहीं लगेगा, यह तो इसी भव

में अशरीरी सिद्ध पद प्राप्त करेगा।'' – इतना कहकर राजा प्रतिसूर्य ने अपनी पत्नी सहित बालक की तीन प्रदक्षिणा की तथा हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् पुत्र सहित अंजना को अपने विमान में बैठाकर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

राजा के शुभागमन के शुभ समाचारों को सुनकर प्रजाजनों ने नगर का शृंगार किया और राजा सहित सभी का भव्य स्वागत किया। अत्यन्त उत्साहपूर्ण वातावरण में पुत्र सहित अंजना एवं राजा प्रतिसूर्य ने नगर में प्रवेश किया। दशों दिशाओं में वादित्र के नाद से उन विद्याधरों ने पुत्र जन्म का भव्य महोत्सव मनाया। जैसा उत्सव स्वर्गलोक में इन्द्रजन्म का होता है, उससे किसी भी तरह यह उत्सव कम नहीं था।

चरमशरीरी जीव हमेशा वज्रवृषभनाराच संहननवाले होते हैं, हनुमान भी व्रजशरीरी होने से 'वज्र-अंग' कहलाये। वज्र अंग शब्द से भाषा परिवर्तित होते-होते 'बज्जर-अंग' शब्द हो गया और अंत में '**बजरंग**' शब्द हनुमानजी के लिए प्रसिद्ध हो गया।

पर्वत में (गुफा में) जन्म हुआ और विमान से गिरने पर पर्वत खण्ड-खण्ड हो गया, अत: उस बालक की माता एवं मामा ने उसका नाम '**शैलकुमार**' रखा तथा हनुमतद्वीप में उसका जन्मोत्सव आयोजित होने के कारण जगत में वह '**हनुमान**' नाम से विख्यात हुआ।

इसप्रकार 'हनुमान' हनुमतद्वीप में रहते थे, देव सदृश प्रभा के धारी बालक हनुमान की चेष्टायें सभी के लिये आनन्ददायिनी बनी हुई थीं।

राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुये श्री गौतमस्वामी कहते हैं– ''हे श्रेणिक ! प्राणियों के पूर्वोपार्जित पुण्य के फलस्वरूप पर्वतों का भेदक महाकठोर बज्र भी पुष्पसमान कोमलरूप परिणमित हो जाता है। महा-आतापकारक अग्नि भी चन्द्र-किरण सदृश शीतल बन जाती

है, इसी तरह तीक्ष्णधार युक्त तलवार भी मनोहर कोमल लतासदृश हो जाती है – ऐसा जानकर विवेकी जीव पाप से विरक्त हो धर्म के अनुरागी हो जाते हैं। हे जीवो ! इस बात को श्रवणकर तुम भी जिनराज के पवित्र चरित्र के अनुरागी बनो। कैसा है जिनराज का चरित्र ? 'मोक्षसुख देने में चतुर है।'– यह सारा जगत ही मोह के कारण जन्म-जरा एवं मरण के दुखों से अत्यन्त तप्तायमान है, उन दुखों से छुड़ाकर परमसुख प्रदान करने में समर्थ – ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान के वीतरागी चरित्र का अनुसरण करो।"

पवनकुमार की व्यथा :–

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं – "हे मगधाधिपति ! यह तो मैंने श्री हनुमान के जन्म का वृत्तान्त कहा, अब हनुमान के पिता पवनंजय का वृत्तान्त सुनो –

अंजनासुन्दरी से विदा प्राप्त कर पवनंजय शीघ्र ही विमान से महाराज रावण के समीप पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार उन्होंने राजा वरुण से युद्ध कर खरदूषण को मुक्त कराया एवं राजा वरुण को बंदी बनाकर महाराज रावण के समक्ष प्रस्तुत किया।

पवनकुमार की अद्भुत शूरवीरता से महाराज रावण को अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् महाराज रावण से विदा प्राप्त कर कुमार पवनंजय ने अंजना के स्नेह के वशीभूत होकर शीघ्र ही अपने राज्य की तरफ प्रस्थान कर दिया।

जब राजा प्रहलाद को विजयी कुमार के शुभागमन का समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने नगर का श्रृंगार करवाकर कुमार का स्वागत किया।

पवनकुमार ने भी राजमहल में पहुँचकर अपने माता-पिता को सादर प्रणाम किया। किंचित् समय राज्यसभा में बैठकर सबसे कुशल

समाचार पूछे और तत्पश्चात् शीघ्र ही प्रहस्त मित्र के साथ अंजना के महल की तरफ प्रस्थान किया। किन्तु.... जैसे जीव विहीन शरीर शोभास्पद नहीं लगता, उसी तरह अंजना रहित वह महल भी उन्हें मनोहर न लगा। इस कारण कुमार का मन अप्रसन्न हो गया और वह प्रहस्त से कहने लगा – हे मित्र ! यहाँ तो प्राणप्रिया अंजना एवं वसंतमाला दोनों ही कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही, वह कहाँ होगी ? उसके बिना तो यह महल एकदम सुनसान प्रतीत हो रहा है, अत: तुम जाकर ज्ञात करो कि वह कहाँ है ?

प्रहस्त ने वहाँ प्रियजनों से पूछकर कुँवर से कहा – ''हे मित्र ! अंजना के चरित्र पर संदेह करके राजमाता ने उन्हें महेन्द्रनगर भिजवा दिया।''

प्रहस्त द्वारा कथित यह वृत्तान्त सुनते ही कुमार के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ, चित्त उदास हो गया, अत: माता-पिता से आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उन्होंने अपने मित्र के साथ महेन्द्रनगर की तरफ प्रस्थान किया।

महेन्द्रनगर ज्यों-ज्यों करीब आता जा रहा था, त्यों-त्यों उनका मन प्रिया-मिलन की मधुर कल्पनाओं से आनंदित हो रहा था।

प्रसन्न-चित्त कुमार ने प्रहस्त से कहा – हे मित्र ! देखो यहाँ अंजना सुन्दरी का निवास स्थान होने से यह नगर कैसा मनोहर ज्ञात हो रहा है। जैसे कैलाश पर्वत पर स्थित जिनमंदिर के शिखर शोभायमान हैं, इसी तरह यहाँ के महलों के शिखर भी शोभायमान हो रहे हैं।'' – इस तरह बातचीत करते हुये दोनों मित्र नगर के समीप जा पहुँचे।

ज्यों ही पवनकुमार के शुभागमन का समाचार राजा महेन्द्र को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उनका भव्य स्वागत कर नगर में प्रवेश करवाया।

महल में पधारकर कुमार कुछ समय राजा महेन्द्र के पास बैठे

और पश्चात् महारानी को नमस्कार कर अंजना को देखने की अभिलाषा से उसके कक्ष की तरफ प्रस्थान किया, परन्तु....वहाँ भी अंजना को न पाकर अत्यन्त विरहातुर होते हुये किसी बालिका से पूछा – "बालिके ! हमारी प्रिय अंजना कहाँ है ?"

उत्तर देते हुये उसने कहा – "हे देव ! आपकी प्रिया यहाँ नहीं है, उसे तो महाराजश्री ने वनवास भेज दिया है।"

ये वचन सुनकर उनका हृदय चूर-चूर हो गया। मानो उनपर बज्रपात ही हो गया हो, उन्हें ऐसा लगा मानो किसी ने कान में पिघला हुआ गर्म शीशा ही डाल दिया हो – उनके होश खो गये। जीव रहित मृत शरीर जैसी उनकी दशा हो गयी। शोकाताप से उनका मुख एकदम कांतिविहीन हो गया।

– इसप्रकार हतोत्साहित होकर कुमार ने शीघ्र ही महेन्द्रनगर का परित्याग कर दिया और अंजना की खोज हेतु सोचने लगे।

कुमार को अत्यन्त आतुर देखकर उनके मित्र प्रहस्त को भी बहुत दुख हुआ। वह कहने लगा – "हे मित्र ! तुम खेद-खिन्न क्यों होते हो ? धैर्य धारण कर अपने चित्त को निराकुल करो। यह पृथ्वी है ही कितनी सी। अंजना जहाँ भी होगी, हर संभव प्रयत्न करके हम उसे खोज लेंगे।"

कुमार ने कहा – "हे मित्र ! तुम तो मेरे पिता के पास आदित्यपुर वापस जाओ और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत कराकर कहना कि यदि मेरी प्रिया फिर से मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मेरा जीवन भी असंभव है। मैं स्वयं तो पृथ्वीतल पर चारों ओर उसकी खोज करूँगा ही, तुम भी योग्य व्यवस्था करो।"

कुमार की आज्ञानुसार प्रहस्त ने तो आदित्यपुर की तरफ प्रस्थान किया और इधर पवनकुमार अकेले ही **अम्बरगोचर नामक हाथी** पर

चढ़कर अंजना की खोज हेतु पृथ्वी पर वन-जंगलों में चारों तरफ विचरण करने लगे। उनके मन में अनेक प्रकार की आशंकायें उत्पन्न होने लगी – ''अरे ! यह कोमल शरीरवाली अंजना शोक-संतप्त हो कहाँ गयी होगी, जिसके हृदय में सदैव ही मेरा ध्यान रहता था, विरहताप से तप्त हो वह इस सघन वन में किस तरफ गयी होगी ? वह सत्यवादी, निष्कपट, धर्मधारक और गर्भ के भार सहित कदाचित् वसंतमाला से बिछुड़ गयी होगी तो ? कहीं वह पतिव्रता श्राविका राजकुमारी शोक के कारण अन्धी तो नहीं हो गयी ? अथवा विकट वन में परिभ्रमण करते हुये भूखी-प्यासी कहीं अजगरों के स्थल गहन कुएँ में तो नहीं गिर गयी ? अथवा दुष्ट पशुओं की भयंकर गर्जना से भयभीत हो उस निर्दोष गर्भवती के प्राण तो नहीं छूट गये होंगे ?''

इसप्रकार चिन्तामग्न पवनकुमार वन में इधर-उधर भटकते हुये अंजना की शोध में तत्पर थे। उनके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प की तरंगें तरंगित हो रहीं थीं। वे विचार रहे थे – ''मेरी प्राणों से भी अधिक प्यारी अंजना इस घोर वन में कहीं पानी बिना कंठ सूखने से प्राण रहित तो नहीं हो गयी ? कदाचित् गंगानदी पार करते समय वह भोली राजबाला बह तो नहीं गयी ? ऐसा भी हो सकता है कि अनेक कंकड़-कांटों से उसके कोमल पैर बिंध गये हों और उसमें एक कदम चलने की शक्ति भी न रही हो ? कौन जाने क्या दशा हुई होगी ? कदाचित् महादुख के कारण गर्भपात हो गया हो और जिनधर्म भक्त वह सती अत्यन्त विरक्त भाव से आर्यिका ही बन गयी हो ?''

इसप्रकार मन में प्रवर्तित अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों सहित परिभ्रमण करते-करते पवनकुमार उसी गुफा के समीप पहुँचे, जहाँ पहले अंजना का निवास था। गुफा में प्रवेश करते ही पवन ने देखा

कि वहाँ भगवान मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान है। जिनबिम्ब को देखते ही कुमार को विस्मय हुआ, वे भक्तिपूर्वक जिनदेव की वन्दना कर स्तुति करने लगे –

"हे वीतराग जिनेन्द्रदेव ! आपके चरण-कमल में मेरा सादर प्रणाम है। हे नाथ ! आप पूर्ण सुखी हैं, आप ही जगत के जीवों को शरणभूत हैं। हे सर्वज्ञपिता ! इस जगत में संयोग-वियोग से आकुलित जीव अपने हृदय में आपका ध्यान धारण कर शान्तिलाभ प्राप्त करते हैं।"

इसप्रकार स्तुति कर वे गुफा में बैठकर भगवान का ध्यान करने लगे। कुछ देर पश्चात् गुफा से बाहर आकर पवनकुमार विचार करने लगे – "इस गुफा में यह प्रतिमा कहाँ से आई ? किसने इस गुफा में इसकी स्थापना की ? कहीं अंजना तो यहाँ नहीं रहती थी ? अवश्य ही वह यहाँ रही होगी। वह तो जिनेन्द्र देव की परमभक्त है, अवश्य ही दर्शन-पूजनार्थ यह प्रतिमा उसने यहाँ स्थापित कराई होगी।

अहो ! कैसा भी संकटकाल हो, जिनेन्द्रदेव का विस्मरण धर्मात्मा जीव कैसे कर सकता है ?" – इसप्रकार विचारकर कुमार उस गुफा में तथा वहीं आस-पास अंजना को खोजने लगे....खूब जोर-जोर से उसके नाम से पुकारने लगे, किन्तु कहीं भी अंजना का पता न लगा।

पर्वत और वन-जंगल में घूम-घूमकर पवनकुमार ने खोज की, पर कहीं भी अपनी प्राणप्रिया को नहीं खोज पाये, अत: वह अत्यन्त निराश हो गये, उस समय सारा जगत उन्हें शून्यवत् प्रतीत हो रहा था। अत: उन्होंने प्राणोत्सर्ग का निर्णय कर लिया।

अंजना के बिना उनका मन न तो पर्वत पर लगता था और न गुफा में और न मनोहर वृक्ष और नदी के किनारे ही।

वे मोह से आच्छादित विवेक-विहीन हो वृक्षों से भी अंजना के

विषय में पूछने लगे – 'हे वृक्ष ! तुमने कहीं मेरी प्रिया को देखा है ?'

पर्वत से पूछते हैं – 'अरे पर्वतराज ! क्या तुमने अपनी किसी गुफा में अंजना को शरण प्रदान की है ?'

इसप्रकार भ्रमण करते हुये वे भूतरव नामक वन में पहुँचकर हाथी से उतर पड़े और हथियारादि समस्त सामग्री जमीन पर डालकर हाथी से कहने लगे – 'हे गजराज ! अब तुम स्वच्छन्दता पूर्वक इस वन में भ्रमण करो।' और फिर जिस तरह मुनिजन आत्मा का ध्यान करते हैं, इसी तरह वे भी अपनी प्रिया का ध्यान करने लगे।

किन्तु स्वामीभक्त हाथी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह वहीं विनयपूर्वक खड़ा हो गया। उसे सम्बोधित करते हुये कुमार फिर कहने लगे – ''हे गजेन्द्र ! इस नदी के किनारे विशाल वन है, तुम वहीं घास का सेवन करो और वन में स्थित हाथियों के समूह के नायक होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करो, अब तुम स्वतन्त्र हो।'' लेकिन वह हाथी तो कृतज्ञ था, स्वामीभक्त था, अत: जैसे सच्चा भ्राता कभी भी अपने भाई का संग नहीं छोड़ता; उसी प्रकार उस हाथी ने कुमार के संग का त्याग नहीं किया, वह भी उदास-चित्त हो कुमार के समीप ही रहता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

पवनंजयकुमार अत्यन्त शोकसंतप्त हो रहे हैं, उनका चित्त एक मात्र अंजना सुन्दरी के ही चिन्तवन में लगा हुआ है। वे सोच रहे हैं – ''यदि मेरी प्राणप्रिया अंजना मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मैं भी इसी वन में प्राणों का परित्याग कर दूँगा।'' – इसप्रकार वन में बैठे-बैठे अनेक प्रकार के विकल्पों की व्याकुलता से पवनकुमार समय व्यतीत कर रहे थे।

यहाँ शास्त्रकार कहते हैं – ''पवनकुमार अंजना के ध्यान में ऐसे तल्लीन हैं कि **यदि ऐसी ही तल्लीनता आत्मध्यान में हो जाये**

तो वह तत्क्षण मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। पर वाह रे मोह ! कभी द्वेषवश होकर २२ वर्ष तक मुख नहीं देखा, परछाईं तक नहीं पड़ने दी, अपने पूज्य पुरुषों की बात की भी अबेहलना कर दी और अब रागवश उसी के वियोग की कल्पना मात्र से प्राणों का परित्याग करने का विचार कर रहे हैं। परन्तु यह विचार एकबार भी नहीं आया कि यह सब पूर्वकृत कर्मों का ही फल है, इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं है, वह तो निमित्तमात्र है और जो बार-बार मरने का विचार आता है, तो मर जाने से अंजना मिल जायेगी क्या ?''

पवन और अंजना का मिलन :–

इधर कुमार से विदा प्राप्त कर उनका मित्र प्रहस्त पिता के समीप पहुँचा और उन्हें सर्व वृत्तान्त से अवगत करा दिया, जिसे सुनते ही महाराज प्रहलाद शोक-संतप्त हो गये, सभी जन शोक सागर में डूब गये।

कुंवर की माता केतुमति भी पुत्र-शोक से अत्यन्त पीड़ित होकर रोते हुये प्रहस्त से बोली – ''अरे प्रहस्त ! तू मेरे पुत्र को अकेला ही छोड़ आया – यह तूने ठीक नहीं किया।''

प्रहस्त ने कहा – ''हे माताजी ! कुमार ने अत्यन्त आग्रह करके मुझे आपके पास यह समाचार देने हेतु भेजा है, अत: मैं आया हूँ; किन्तु अब मैं उनके पास ही वापस जा रहा हूँ।''

माता ने पूछा – ''कुमार कहाँ है ?''

प्रहस्त ने कहा – ''जहाँ अंजना होगी, वहीं वे भी होंगे।''

माता ने पूछा – ''अंजना कहाँ है ?''

प्रहस्त ने कहा – ''यह मुझे ज्ञात नहीं। हे माता ! जो जीव बिना विचारे शीघ्रता से कोई कार्य करते हैं, उन्हें बाद में पछताना ही पड़ता है। आपके पुत्र ने तो यह निश्चय कर लिया है कि यदि उन्हें अंजना प्राप्त नहीं हुई तो वे प्राणत्याग कर देगा।''

कुमार के इस कठोर निर्णय की जानकारी प्राप्त होते ही माता सहित पूरा अन्त:पुर ही रुदन करने लगा। विलाप करती हुई माता कहने लगी – "हाय ! हाय ! मुझ पापिनी ने यह क्या किया ?

अरे ! मैंने महासती पर कलंक लगाया, इस कारण मेरे पुत्र का जीवन भी संदेहास्पद है। मैं क्रूरभाव की धारक, वक्रपरिणामी एवं मन्दभागिनी हूँ। मैंने बिना विचारे ही यह कार्य किया है। यह नगर, यह कुल, यह विजयार्द्ध पर्वत एवं यह सेना – कोई भी पवनंजय के बिना शोभते नहीं हैं। मेरे पुत्र समान अन्य कौन है ? जिसने रावण से भी अविजित (न जीता जानेवाले) – ऐसे वरुण राजा को क्षण मात्र में ही बंदी बना लिया। हे वत्स ! देव-गुरु की पूजा में तत्पर विनयवंत तू कहाँ है ? तेरे दुख से मैं तप्तायमान हूँ, हे पुत्र ! तू आकर मुझसे बात कर और मेरे शोक का निवारण कर।" – इसप्रकार विलाप करती हुई वह सिर पीटने लगी।

रानी केतुमति के करुण-विलाप से सारा कुटुम्ब शोकाकुल हो गया। राजा प्रहलाद भी अश्रुधारा बहाने लगे। तत्पश्चात् राजा प्रहलाद ने सकुटुम्ब प्रहस्त के नेतृत्व में कुमार पवनंजय के साथ-साथ अंजना की खोज करने हेतु विचार किया। दोनों श्रेणियों के विद्याधरों को भी आदरपूर्वक खोज के लिये आमंत्रित कर लिया। सभी आकाशमार्ग से खोज हेतु निकल पड़े, क्या पृथ्वी और क्या घनघोर जंगल, क्या पर्वत और क्या गुफा – वे सर्वत्र खोज करने के लिये विचरने लगे।

राजा प्रहलाद का एक दूत राजा प्रतिसूर्य के समीप गया और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत कराया, जिसे सुनकर प्रतिसूर्य को बहुत शोक हुआ। अंजना को जब ये समाचार विदित हुये तो उसे पहले की अपेक्षा अधिक दुख हुआ। वह आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई रुदन करने लगी – "हा नाथ ! मेरे प्राणाधार !! मेरा चित्त आप ही के प्रति समर्पित है,

तथापि इस जन्मदुखयारी को छोड़कर आप कहाँ चले गये ? ऐसा भी क्या क्रोध कि समस्त विद्याधरों से अदृश्य हो गये। एकबार पधारकर अमृतवचन बोलो। इतने दिन तक तो आपके दर्शन की अभिलाषा से प्राणों को टिकाये रखा, अब भी यदि आपके दर्शन न हों तो इन प्राणों से मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरा मनोरथ था कि अब तो नाथ का समागम होगा, किन्तु मेरा यह मनोरथ भी टूट गया। अरे रे ! इस मन्दभागिनी के कारण आपको कष्ट प्राप्त करना पड़ा। आपके कष्ट की बात सुनने से पूर्व ही मेरे प्राण क्यों नहीं छूट गये।''

अंजना को इस तरह विलाप करती देख वसंतमाला कहने लगी – ''हे देवी ! ऐसे वचन मत बोलो। तुम धैर्य धारण करो, अवश्य ही तुम्हें स्वामी का समागम प्राप्त होगा।''

राजा प्रतिसूर्य ने भी उसे धैर्य बँधाते हुये कहा – ''हे पुत्री ! तू विश्वास रख, मैं शीघ्र ही तेरे पति को खोजकर लाऊँगा''

– इसप्रकार कहकर मन से भी तीव्र गतिमान विमान में बैठकर राजा प्रतिसूर्य ने कुमार की खोज आरम्भ कर दी। राजा प्रतिसूर्य की सहायतार्थ दोनों श्रेणियों के विद्याधर एवं लंकानिवासी भी इस कार्य में जुट गये। खोजते-खोजते वे सभी भूतरव वन में आये और वहाँ अंबरगोचर हाथी को देखा, जिससे सभी विद्याधरों को अपार हर्ष हुआ कि जहाँ यह हाथी है, वहीं पवनकुमार भी होंगे; क्योंकि पूर्व में भी अनेक बार कुमार इस गज के साथ देखे गये हैं।

जब विद्याधर उस अंजनगिरी समान हाथी के समीप पहुँचे तो उसे निरंकुश देखकर भयभीत हो उठे और वह हाथी भी विद्याधरों के लश्कर एवं शोर-गुल को देख-सुनकर क्षोभावस्था को प्राप्त हुआ। उसके कपाल में से मद झरने लगा और वह गर्जन करने लगा। वह तीव्र वेग से कुमार के आस-पास चक्कर लगाने लगा। जिस तरफ

हाथी दौड़ता, विद्याधर उस दिशा से हट जाते। स्वामी की रक्षार्थ तत्पर वह हाथी सूँड में तलवार लेकर कुमार के समीप खड़ा हो गया, कुँवर की समीपता छोड़कर वह थोड़ा भी इधर-उधर नहीं होता था, उसके भय से विद्याधर भी समीप नहीं आ सकते थे। अन्ततोगत्वा विद्याधरों ने उस हाथी पर काबू पाया और समीप जाकर कुमार को देखने लगे।

कुमार तो एकदम शान्त मौन से इसप्रकार बैठे थे, मानो वे काठ के पुतले हों। विद्याधरों के अनेक प्रयत्न भी उनके चिन्तवन युक्त मौन को न तोड़ सके। जैसे ध्यानमग्न मुनिराज किसी से चर्चा-वार्ता नहीं करते, वही स्थिति इस समय कुमार की थी; पर दोनों के ध्यान के ध्येय में आकाश-पाताल जैसा अन्तर था। **एक का ध्यान संसार बढ़ानेवाला था तो दूसरे का ध्यान संसार मिटानेवाला था।**

पवनंजय के माता-पिता उसका मस्तक चूमकर अश्रुपूरित नेत्रों से गद्‌गद्‌वाणी में उससे कहने लगे – "हे पुत्र ! हे विनयवान !! तू हमें त्यागकर यहाँ क्यों आया ? तू तो राजमहल का वासी है, इस वन में तूने रात्रि कैसे व्यतीत की। हे पुत्र ! तू मौन क्यों है ?" – इसप्रकार उन्होंने हरसंभव प्रयत्न किया, पर कुमार ने एक शब्द का भी उच्चारण नहीं किया।

तब 'इसने मौनव्रत धारण कर अब मरण का ही निश्चय किया है' – ऐसा समझकर समस्त विद्याधरों को महाशोक हुआ और पिता सहित सभी विलाप करने लगे। तभी अंजना के मामा राजा प्रतिसूर्य कुमार के समीप आकर कहने लगे – "सभी शान्त हो जाओ। मैं वायुकुमार (पवनकुमार) के साथ वचनालाप करूँगा।"

– इतना कहकर वे कुमार के एकदम समीप गये और उसके कान में कहने लगे – "हे कुमार ! सुनो, अंजना सुन्दरी सर्व प्रकार से

कुशलता पूर्वक हनुमत द्वीप में हमारे राजमहल में आपका इन्तजार कर रही हैं।''

इतना सुनते ही हर्ष से रोमांचित पवनकुमार पूछने लगे – ''हे महानुभाव ! अंजना कहाँ है ? और बालक तो सकुशल है न ?''

प्रतिसूर्य ने कहा – ''अंजना को उसके पुत्र सहित विमान में बैठाकर मैं अपने राज्य हनुमत द्वीप ले जा रहा था, तभी एकाएक मार्ग में बालक विमान से गिर पड़ा....''

बालक के गिरने की बात सुनते ही 'हाय-हाय' – ऐसे उद्गार कुमार के मुख से निकल पड़े।

तब प्रतिसूर्य ने कहा – ''अरे कुमार ! चिन्ता मत करो; किन्तु उसके पश्चात् घटित घटना का श्रवण करो, जिससे तुम्हारा सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जायेगा। ....बालक के गिरते ही मैंने विमान को नीचे उतारकर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मैंने देखा पर्वत तो खण्ड-खण्ड हो गया है और बालक एक शिला पर पड़ा-पड़ा क्रीड़ा कर रहा है। दशों दिशायें उसके तेज से जगमगा रहीं हैं। तब मैंने उस चरमशरीरी बालक को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। उसकी माता को भी अपूर्व आनन्द हुआ और उसका नाम 'शैलकुमार' रखा। सखी वसंतमाला एवं शैलकुमार सहित अंजना को मैं हनुमत द्वीप ले गया, वहाँ पुत्रजन्म का महान उत्सव मनाया, अत: उस बालक का 'हनुमान' – यह दूसरा नाम प्रसिद्ध हुआ।

हे कुमार ! वह पतिव्रता शीलव्रतधारी अपनी सखी एवं पुत्र सहित हमारे राजमहल में आपका इन्तजार कर रही हैं।''

इस वृत्तान्त को सुनकर पवनकुमार को हार्दिक प्रसन्नता हुई और वे राजा प्रतिसूर्य से अंजना के संबंध में विशेष जानने की जिज्ञासा से पवनकुमार उनके ही विमान में सवार हो हनुमत द्वीप की तरफ

चल दिये। उनके साथ माता-पिता एवं अन्य राजाओं ने भी अंजना को देखने के उद्देश्य से हनुमत द्वीप की ओर प्रस्थान कर दिया।

मार्ग में जाते हुए पवनकुमार ने प्रतिसूर्य राजा से पूछा कि तुम्हारा अंजना से मिलान कैसे, कब और कहाँ हुआ ?

राजा प्रतिसूर्य ने कहा – मैं तुम्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाता हूँ।

''संध्याभ्र नामक सुन्दर पर्वत पर अनंग-विजय नामक मुनि को केवलज्ञान होने पर इन्द्रादिक देव उनके दर्शनार्थ पधारे थे, उस समय मैं भी वहाँ पहुँचा था। केवलीप्रभु की वन्दना करने के उपरान्त जब मैं वापस अपने नगर की तरफ आ रहा था, तब मेरा विमान एक गुफा के ऊपर आया तो मैंने उस गुफा में से आता एक नारी का स्वर सुना, गुफा में पहुँचकर देखा तो वहाँ अंजना थी। जब मैंने उससे वनवास का कारण पूछा तो उसकी सखी ने मुझे सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराया। अंजना शोकसतप्त हो रुदन कर रही थी, अत: मैंने उसे धैर्य बंधाया। उसी गुफा में उसने पुत्ररत्न हनुमान को जन्म दिया। उस पुत्र की कांति से तो सारी ही गुफा ऐसी जगमगा रही थी, मानो सुवर्ण निर्मित हो।'' – बात करते-करते कब हनुमत द्वीप पहुँच गये, पता ही नहीं चला। नगर में पहुँचने पर राजा प्रतिसूर्य ने सभी का भव्य स्वागत किया।

जब कुमार अंजना के निकट पहुँचे तो लज्जाशील अंजना ने बालक हनुमान को कुमार के हाथों में सौंप दिया। 'मुक्तिदूत चरमशरीरी पुत्र को देखने मात्र से कुमार एवं अंजना अपने सम्पूर्ण दुख भूल गये और लम्बे अन्तराल के पश्चात् हुए इस मधुर-मिलन से दोनों को अपार हर्ष हुआ।

राजा प्रतिसूर्य ने सभी विद्याधरों को कुछ दिनों अपने यहाँ सम्मान सहित ठहराया। तत्पश्चात् सभी ने अपने-अपने स्थान की ओर

प्रस्थान किया। जब पवनकुमार भी जाने लगे, तब उन्होंने पवनकुमार को अत्याग्रह करके वहीं रोक लिया। हनुमत द्वीप में हनुमान देवों की तरह क्रीड़ा करते हैं और आनन्दकारी चेष्टायें करते हैं, जिन्हें देखकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहता।

श्री हनुमान के जन्म, पवनंजय-अंजना के मिलाप की यह कथा अब यहीं समाप्त होती है। इसे पूर्ण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं–

“श्री हनुमान जन्म एवं पवनंजय-अंजना के मिलाप की यह अद्भुत कथा अनेक रसों से परिपूर्ण है। जो जीव भावपूर्वक इस कथा को सुनेंगे, सुनायेंगे व पढ़ेंगे, उन्हें धर्म में दृढ़ता प्राप्त होगी, उनके वैराग्य की अभिवृद्धि होगी, अशुभक्रिया की निवृत्ति एवं शुभक्रिया में प्रवृत्ति तथा अशुभ-शुभ दोनों के प्रति समभाव धारण करते हुए उन्हें अनुक्रम से धर्म की अभिवृद्धि होगी और अंत में स्वावलंवन से जगत में दुर्लभ ऐसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।”

अब हम मुख्यरूप से वीर हनुमान के जीवन चरित्र का कथन करते हैं। हनुमान को भेदज्ञान की वीतरागी विद्या तो प्रगट ही थी, इसके उपरांत आकाशगामिनी आदि अनेक पुण्य-विद्यायें भी उसे सिद्ध हो गईं। वह समस्त जिनशास्त्र के अभ्यास में प्रवीण हो गया। उसे रत्नत्रय धर्म की परम प्रीति थी, वह सदा देव-गुरु-धर्म की उपासना में तत्पर रहता था। अत: युवा बंधुओ ! हनुमान का महान आदर्श लक्ष्य में रखकर आप भी उसके समान होने का प्रयत्न करो।

माता अंजना के साथ बालक हनुमान की चर्चा :–

महान पुण्यवंत और आत्मज्ञानी-धर्मात्मा ऐसा वह बालक ‘हनुमत’ नाम के द्वीप में आनंद के साथ रह रहा है। अंजना माता अपने लाड़ले बालक को उत्तम संस्कार देती हैं और बालक की महान चेष्टाओं को देखकर आनंदित होती हैं। ऐसे अद्भुत प्रतापवंत बालक

को देखकर वे जीवन के सभी दु:खों को भूल गई हैं, तथा आनंद से जिनगुणों में चित्त को लगाकर भक्ति करती हैं। वनवास के समय गुफा में देखे हुए मुनिराज को बारंबार याद करती हैं।

बालकुंवर हनुमान भी प्रतिदिन माता के साथ ही मंदिर जाता है। देव-शास्त्र-गुरु की पूजन करना सीखता है और मुनिराजों की संगति से आनंदित होता है।

एकबार ८ वर्ष के बालक को लाड़ करती हुई अंजना माँ पूछती हैं – "बेटा हनु ! तुझे क्या अच्छा लगता है ?"

हनुमान कहते हैं – "माँ मुझे तो एक तू अच्छी लगती है और एक (आत्मा) अच्छा लगता है।"

माँ कहती है – "वाह बेटा ! मुनिराज ने कहा था कि तू चरम शरीरी है अर्थात् तू तो इस भव में ही मोक्ष सुख प्राप्त करके भगवान बनने वाला है।"

कुंवर कहता है – "वाह माता, धन्य वे मुनिराज ! हे माता, मुझे आप जैसी माता मिली, तब फिर मैं दूसरी माता क्यों करूँ ? माँ, आप भी इस भव में अर्जिका बनकर भव का अभाव कर एकाध भव में ही मोक्ष को प्राप्त करना।"

अंजना कहती है – "वाह बेटा ! तेरी बात सत्य है, सम्यक्त्व के प्रताप से अब तो इस संसार-दु:खों का अंत नजदीक आ गया है। बेटा, जबसे तेरा जन्म हुआ है, तबसे दु:ख टल गये हैं और अब ये संसार के समस्त दु:ख भी जरूर ही टल जायेंगे।"

कुंवर कहता है – "हे माता ! संसार में संयोग-वियोग की कैसी विचित्रता है तथा जीवों के प्रीति-अप्रीति के परिणाम भी कैसे चंचल और अस्थिर हैं ! एक क्षण पहले जो वस्तु प्राणों से भी प्यारी लगती है, दूसरे क्षण वही वस्तु ऐसी अप्रिय लगने लगती है कि उसकी

तरफ देखना भी नहीं सुहाता तथा कुछ समय बाद वही वस्तु फिर से प्रिय लगने लगती है। इसप्रकार **परवस्तु के प्रति प्रीति-अप्रीति के क्षणभंगुर परिणामों द्वारा जीव आकुल-व्याकुल रहा करता**

है। एकमात्र चैतन्य का सहज ज्ञानस्वभाव ही स्थिर और शांत है, वह प्रीति-अप्रीति रहित है – ऐसे स्वभाव की आराधना बिना अन्यत्र कहीं सुख नहीं है।"

अंजना कहती है – "वाह बेटा ! तेरी मधुर वाणी सुनने से आनन्द आता है, जिनधर्म के प्रताप से हम भी ऐसी आराधना कर ही रहे हैं। जीवन में बहुत कुछ देख लिया, दुःखमय इस संसार की असारता जान ली। बेटा ! अब तो बस, आनंद से एक मोक्ष की ही साधना करना है।"

इसप्रकार हमेशा माँ-बेटा (अंजना और हनुमान) बहुत देर तक आनंद से चर्चा कर एक-दूसरे के धर्म-संस्कारों को पुष्ट करते रहते।

राजपुत्र हनुमान, विद्याधरों के राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुमत द्वीप में देवों के समान खेलते और आनंदकारी चेष्टाओं द्वारा सभी को

आनन्दित करते – ऐसा करते-करते वह नवयौवन दशा को प्राप्त हुए। कामदेव होने से उनका रूप-लावण्य परिपूर्ण खिल उठा।

इसप्रकार समय व्यतीत होता गया। हनुमान यौवनावस्था को प्राप्त हुये, कामदेव होने से उनके रूप की अद्भुतता लेखनी का विषय नहीं है। वे महाबलवान अतिशय बुद्धिमान हैं, उन्हें अल्पवय में ही अनेक विद्यायें सिद्ध हो गईं, उन्हें रत्नत्रय धर्म के प्रति परमप्रीति है। वे सर्व शास्त्रों के अभ्यास में प्रवीण हैं तथा देव-गुरु-धर्म की उपासना में सदैव तत्पर हैं।

केवली के दर्शन से हनुमान को महान आनंद :–

एकबार श्री अनंतवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों तथा विद्याधरों का समूह आकाश से मंगल बाद्य बजाते हुए केवलज्ञान का महान उत्सव मनाने आया। हनुमान भी आनन्द से उत्सव में गये और भगवान के दर्शन किये। अहा ! दिव्य धर्मसभा के बीच निरालम्ब विराजमान अनंत चतुष्टयवंत अरहंतदेव को देखते ही हनुमान को कोई आश्चर्यकारी प्रसन्नता हुई। उसने इस जीवन में प्रथमबार ही वीतराग देव को साक्षात् देखा था। **जिसप्रकार सम्यग्दर्शन के समय प्रथमबार अपूर्व आत्मदर्शन होते ही भव्यजीवों के आत्मप्रदेश परम-आनन्द से खिल उठते हैं, उसी प्रकार हनुमान का हृदय भी प्रभु को देखते ही आनन्द से खिल उठा।**

अहा, प्रभु की सौम्य मुद्रा पर कैसी परमशांति और वीतरागता छा रही है – यह देख-देखकर हनुमान का रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो गया। वह प्रभु की सर्वज्ञता में से झरता हुआ अतीन्द्रिय आनन्द रस, श्रद्धा के प्याले में भर-भर कर पीने लगा। परमभक्ति से उसकी हृदय-वीणा झनझना उठी।

अहो प्रभो ! आप अनुपम अतीन्द्रिय आत्मा के सुख को

शुद्धोपयोग के प्रसाद से अनुभव कर रहे हो ! हमारा भी यही मनोरथ है कि ऐसा उत्कृष्ट अनुपम सुख हमें भी शीघ्र प्रगट हो।

ऐसी प्रसन्नता पूर्वक स्तुति करके हनुमान केवली प्रभु की सभा में मनुष्यों के कोठे में जाकर बैठे। महाराजा रावण, इन्द्रजीत, कुंभकरण, विभीषण वगैरह भी प्रभु के केवलज्ञान-उत्सव में आये तथा भक्तिभाव से प्रभु की वंदना करके धर्मसभा में बैठे। प्रभु का उपदेश सुनने के लिए सभी आतुर हैं कि अब वहाँ चारों ओर आनंद फैलाती हुई दिव्यध्वनि छूटी; भव्यजीव हर्ष-विभोर हो गये। **जैसे तीव्र गर्मी में मेघवर्षा होते ही जीवों को शांति हो जाती है, वैसे ही संसार क्लेश से संतप्त जीवों का चित्त दिव्यध्वनि की वर्षा से अत्यंत शांत हो गया।**

दिव्यध्वनि में प्रभु ने कहा – "**अहो जीवो ! संसार की चारों गतियों के कारणभूत शुभाशुभभाव दुःखरूप हैं; आत्मा की मोक्षदशा ही परम-सुखरूप है – ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसकी साधना करो। वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग रहित हैं और आनन्दरूप हैं।**"

भगवान की दिव्यध्वनि में आया – "**आत्मा के चैतन्यसुख के अनुभव बिना अज्ञानी जीव पुण्य-पाप में मूर्छित हो रहा है और बाह्य वैभव की तृष्णा की दाह से दुःखी हो रहा है। अरे जीवो ! विषयों की लालसा छोड़कर तुम अपनी आत्मशक्ति को जानो, विषयातीत चैतन्य का महान सुख तुम्हारे में ही भरा है।**

आत्मा को भूलकर जीव विषयों के वशीभूत होकर महानिंद्य पापकर्मों के फलस्वरूप नरकादि गतियों के महादुःख को भोगते हैं। अरे, महादुर्लभ मनुष्यपना पाकर के भी तू आत्महित को नहीं जानता तथा तीव्र हिंसा-झूठ-चोरी आदि पाप करके नरक में जाता है।

माँस-मच्छी-अंडा-शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करनेवाला जीव नरक में जाता है, वहाँ उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं – ऐसे महादु:खों से आत्मा को छुड़ाने के लिए, हे जीवो ! तुम अपने आत्मा को पहिचान कर, श्रद्धा कर एवं अनुभव करके शुद्धोपयोग प्रगट करो, **शुद्धोपयोग रूप आत्मिक धर्म का फल ही मोक्ष है।**

जीव कभी पुण्य करके देवगति में उपजा, वहाँ भी अज्ञान से बाह्य वैभव में ही मूर्छित रहा, उसने आत्मा के सच्चे सुख को जाना ही नहीं। अरे, अभी यह महादुर्लभ अवसर धर्म सेवन करने के लिए मिला है; इसलिए हे जीव ! तू अपना हित कर ले, ये संसार सागर में खोया हुआ मनुष्य-रत्न फिर हाथ आना बड़ा दुर्लभ है। इसलिए **जैन-सिद्धांत के अनुसार तत्त्वज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन सहित मुनिधर्म या श्रावकधर्म का पालन करके आत्मा का हित करो।**"

इसप्रकार श्री अनंतवीर्य केवली प्रभु के श्रीमुख से हनुमान एकाग्रचित से उपदेश सुनकर परम वैराग्य में तन्मय हो गये। राजा रावण आदि भी भक्ति से उपदेश सुन रहे हैं – ऐसा सुन्दर वीतरागी धर्म का उपदेश सुनकर देव, मनुष्य और तिर्यञ्च – सभी आनंदित हुए; कितने ही जीवों ने साक्षात् मोक्षामार्गरूप मुनिपद धारण किया। कितनों ने श्रावकव्रत अंगीकार कर लिये, कितने ही जीव कल्याणकारी अपूर्व सम्यक्त्व धर्म को प्राप्त हुए।

हनुमान, विभीषण आदि ने भी उत्तम भाव से श्रावकव्रत धारण किये। हनुमान की तो यद्यपि मुनि होने की भावना थी, परन्तु माता अंजना के प्रति परमस्नेह के कारण वह मुनि नहीं बन सके। अरे, संसार का स्नेह-बंधन तो ऐसा ही है।

भगवान के उपदेश से बहुत से जीवों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र खिल उठता है। जैसे वर्षा होने से बगीचा खिल जाता

है, वैसे ही जिनवाणी की अमृतवर्षा से धर्मात्मा जीवों का आनन्द बगीचा श्रावकधर्म तथा मुनिधर्म रूप फूलों से खिल उठता है।

– रावण ने भी भगवान को प्रणाम करके कहा – ''हे देव ! मैं ऐसा नियम लेता हूँ कि जो पर-नारी मुझे चाहती न हो, उसे मैं नहीं भोगूँगा। पर-स्त्री चाहे कितनी ही रूपवान क्यों न हो तो भी मैं बलात्कार करके उसका सेवन नहीं करूँगा।''

रावण के भाई कुंभकरण ने भी इस प्रसंग पर प्रतिज्ञा ली – कि ''प्रतिदिन सुबह से उठकर मैं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक-पूजन करूँगा; तथा आहार के समय मुनिराज पधारें तो उनको आहारदान देकर पीछे मैं भोजन करूँगा। मुनि के आहार के समय से पहले मैं आहार नहीं करूँगा।''

इसप्रकार धर्मात्मा कुंभकरण (जो चरमशरीरी हैं तथा बड़वानी-चूलगिरि सिद्धक्षेत्र से मोक्ष गये हैं) ने नियम लिया। दूसरे कितने ही जीवों ने भी अपनी-अपनी शक्ति अनुसार अनेक प्रकार के व्रत-नियम लिये। – इसप्रकार केवली प्रभु की सभा में आनन्द से धर्म श्रवण करके तथा व्रत-नियम अंगीकार करके सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये। हनुमान को तो आज हर्ष का पार न था। आज तो उन्होंने साक्षात् भगवान को देखा था, उनके हर्ष की क्या बात करनी ! घर आते ही अपने महान हर्ष की बात उनने अपनी माता से कही –

हनुमान की अंजना माँ के साथ तत्त्वचर्चा :–

अहो माँ ! आज तो मैंने अरहंत परमात्मा को साक्षात् देखा है। अहो, कैसा अद्भुत उनका रूप ! कैसी अद्भुत उनकी शांत मुद्रा ! और कैसा आनन्दकारी उनका उपदेश ! माँ आज तो मेरा जीवन धन्य हो गया।

माँ बोली – ''वाह बेटा ! अरिहंत देव के साक्षात् दर्शन होना तो वास्तव में महाभाग्य की बात है, **तथा उनके स्वरूप को जो पहिचाने, उसे तो भेदज्ञान प्रगट हो जाता है।**

हनुमान कहते हैं – ''वाह माता ! आप की बात सत्य है। अरिहंत परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं; उनके द्रव्य में, गुण में, पर्याय में सर्वत्र चैतन्यभाव ही है, **उनमें राग का तो कोई अंश भी नहीं है अर्थात् उनको पहिचानते ही आत्मा का राग रहित सर्वज्ञ-स्वभाव पहिचान में आ जाता है – ऐसी पहिचान का नाम ही सम्यग्दर्शन है।** कहा भी है –

जो जानता अरिहन्त को, चेतनमयी शुद्धभाव से।
वह जानता निज आत्मा, समकित ग्रहे आनन्द से।।

हे माता, अनुभवगम्य हुई इस बात को श्री प्रभु की वाणी में सुनते ही कोई महान प्रसन्नता होती है।

माता अंजना भी पुत्र का हर्ष देखकर बोली –

वाह बेटा ! सर्वज्ञ भगवान के प्रति तेरी परिणति में ऐसा बहुमान का भाव देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। भगवान की वाणी में तूने और क्या सुना, वह तो कह ?

हनुमान ने अत्यंत उल्लास से कहा – ''अहो माता ! आत्मा का अद्भुत आनन्दमय स्वरूप भगवान बताते थे। वीतराग रस से भरे चैतन्यतत्त्व की कोई गंभीर महिमा भगवान बतलाते थे, उसे सुनते ही भव्यजीव शांतरस के समुद्र में सराबोर हो जाते थे। माता, वहाँ तो बहुत से मुनिराज थे, वे तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते थे। अहो, ऐसे आनन्द में झूलते मुनिवरों को देखकर मुझे उनके साथ रहने का मन हुआ, परन्तु....(इतना कहकर हनुमान रुक गए)''

अंजना ने पूछा – ''क्यों बेटा हनुमान ! तू बोलते-बोलते रुक क्यों गया ?''

''क्या कहती हो माँ ! मुझे मुनिदशा की बहुत भावना हुई, परन्तु हे माता मैं तेरे स्नेह-बंधन को तोड़ नहीं सका; तुम्हारे प्रति परम प्रेम के कारण मैं मुनि नहीं हो सका। **माता, सारे संसार का मोह मैं एक क्षण में छोड़ने को समर्थ हूँ, परन्तु तेरे प्रति उत्पन्न मोह नहीं छूटता है, इसलिए महाव्रत के बदले मैंने मात्र अणुव्रत ही धारण किये।**''

''अहो पुत्र ! तू अणुव्रतधारी श्रावक हो गया – ये महा-आनन्द की बात है। तेरी उत्तम भावनाओं को देखकर मुझे हर्ष होता है। मैं ऐसे महान धर्मात्मा और चरमशरीरी मोक्षगामी पुत्र की माता हूँ – इसका मुझे गौरव है। **अरे, वन में जन्मा हुआ मेरा ये पुत्र अंत में तो वनवासी ही होगा और आत्मा की परमात्मदशा को साधेगा।**''

माता-पुत्र बहुत बार ऐसी आनन्दपूर्वक धर्मचर्चा करते थे। ऐसे धर्मात्मा जीवों को अपने आंगन में देखकर राजा प्रतिसूर्य (अंजना के मामा) भी खुश होते थे.... कि वाह ! ऐसे धर्मी जीवों की सेवा का अनायास ही लाभ मिला – यह हमारा धन्य भाग्य है ! अब तो श्री पवनजय भी यहाँ आकर राजा प्रतिसूर्य का आतिथ्य एवं अंजना और पुत्र हनुमान को पाकर आनन्दित हो रहे थे।

रणशूर हनुमान....रावण की मदद में :–

प्रतिसूर्य राजा का राजदरबार भरा हुआ है। श्री पवनकुमार, हनुमान आदि भी राजसभा में शोभायमान हो रहे हैं, तेजस्वी हनुमान को देखकर सभी मुग्ध हो रहे हैं, इतने में रावण के एक राजदूत ने राजसभा में प्रवेश किया और प्रतिसूर्य राजा से रावण का संदेश देते हुए कहने लगा –

"हे महाराज ! मैं लंकाधिपति रावण महाराज का संदेश लेकर आया हूँ; पहले जिस वरुण राजा को पवनकुमार ने जीत लिया था, वह वरुण राजा अब फिर से महाराजा रावण की आज्ञा के विरुद्ध आचरण कर रहा है; इसीलिए उसके साथ युद्ध में मदद करने के लिए आपको तथा पवनकुमार को महाराजा रावण ने पुन: आमंत्रित किया है।"

रावण की आज्ञा शिरोधार्य करके राजा प्रतिसूर्य तथा पवनकुमार युद्ध में जाने की तैयारी करने लगे और हनुमत द्वीप का राज्यभार हनुमान को सौंपने का विचार कर उसके राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे। यह देखकर वीर हनुमान ने कहा – "पिताजी ! आप दोनों वृद्ध (बुजुर्ग) हो, मेरे होते हुए आपका युद्ध में जाना उचित नहीं। मैं ही युद्ध में जाऊँगा और वरुण राजा को जीतकर आऊँगा।"

यह सुनकर पवनकुमार बोले – "बेटा हनुमान ! तुम शूरवीर हो, ये सत्य है; परंतु अभी तुम बालक हो, तुम्हारी उम्र छोटी है, तुमने रणभूमि कभी देखी नहीं, दुश्मन राजा बड़ा बलवान है, उसके पास बड़ी सेना है, तथा उसका किला बहुत मजबूत है; इसलिए तू युद्ध में जाने का आग्रह छोड़ दे, और हमें ही जाने दे।"

तब हनुमान कहते हैं – "भले मैं छोटा हूँ, परन्तु शूरवीर हूँ; रणक्षेत्र पहले कभी नहीं देखा – इससे क्या ? ऐसे तो **हे पिताजी ! चारों गतियों में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए जीवों ने मोक्षगति कभी नहीं देखी, फिर भी उस अभूतपूर्व ऐसे मोक्षपद को क्या मुमुक्षुजीव आत्म-उद्यम द्वारा नहीं साधते ?** पहले कभी नहीं देखी हुई मोक्षपदवी को भी मुमुक्षुजीव पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर ही लेते हैं – इसीप्रकार पहले कभी नहीं देखे हुए, आत्मतत्त्व को अपूर्व सम्यग्ज्ञान द्वारा भव्यजीव देख ही लेते हैं; तो फिर पहले नहीं देखा – ऐसे रणक्षेत्र में जाकर शत्रु को जीत लेना कौनसी बड़ी बात है ?

इसीलिए हे पिताजी ! मुझे ही युद्ध में जाने की आज्ञा दो, मैं वरुण को जीत लूँगा।

जिसप्रकार शेर का बच्चा बड़े हाथी के सामने जाने से नहीं डरता, उसीप्रकार मैं भी निर्भय होकर वरुण के सामने जाने से नहीं डरता, अवश्य ही मैं उसे जीत लूँगा।''

हनुमान की वीरताभरी बातें सुनकर सभी प्रसन्न हुए। वाह, देखो मोक्षगामी जीव की भणकार ! युद्ध की बात से भी उसने मोक्ष का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। यद्यपि अनादि अज्ञानदशा में जीव ने कभी आत्मा को जाना नहीं था, न सिद्धपद का स्वाद ही चखा था, फिर भी जब वह मुमुक्षु हुआ और मोक्ष को साधने तैयार हुआ; तब आत्मस्वभाव में से ही सम्यग्ज्ञान प्रगट करता हुआ, चैतन्य की स्वाभाविक वीरता द्वारा आत्मा को जान लेता है और अनादि के मोह को जीतकर सिद्धपद को साध लेता है। लोक में कहावत है कि – '**रणे चढ़ो राजपूत छिपे नहीं**'

– इसप्रकार हनुमान का अति आग्रह देखकर उसे कोई रोक नहीं सका, अन्त में सभी ने उसे युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी।

प्रसन्नचित्त से विदाई लेकर हनुमानजी जिन-मंदिर में गये; वहाँ बहुत ही शांतचित्त से अष्ट मंगल द्रव्यों द्वारा अरहंत देव की पूजा की, सिद्धों का ध्यान किया और भावना भायी –

''अहो भगवंतो ! आप समान मैं भी मोहशत्रु को जीतकर आनन्दमय मोक्षपद को कब साधूँगा।''

इसप्रकार पंचपरमेष्ठी भगवन्तों की पूजन करने के बाद हनुमान ने माता के पास जाकर विदाई माँगी –

''हे माँ ! मैं युद्ध में वरुण को जीतने जा रहा हूँ, तुम मुझे आशीर्वाद दो।''

माता अंजना तो आश्चर्य में पड़ गई – ऐसे शूरवीर पुत्र को देखकर उसके हृदय में स्नेह उमड़ आया... पुत्र को युद्ध के लिए विदाई देते समय उसकी आँखों में आँसू भर आये; परंतु पुत्र की शूरवीरता का उसे विश्वास था, इसलिए आशीर्वाद पूर्वक विदाई दी –

''बेटा ! जा, **जिसप्रकार वीतरागी मुनिराज शुद्धोपयोग द्वारा मोह को जीत लेते हैं, उसीप्रकार तू भी शत्रु को जीतकर जल्दी वापिस आना।**''

माता के चरणों में नमस्कार करके हनुमान ने विदाई लेकर, लश्कर सहित लंका नगरी की तरफ प्रस्थान किया। रास्ते में अनेक शुभ शगुन हुये। जब वीर हनुमान रावण के पास जा पहुँचे; तब दिव्यरूपधारी हनुमान को देखते ही राक्षसवंशी-विद्याधर राजागण विस्मित होकर बातें करने लगे –

''ये हनुमानजी महान भव्योत्तम हैं, इन्होंने बाल्यावस्था में ही पर्वत की शिला चूर-चूर कर डाली थी, ये तो वज्र-अंगी हैं। महाराजा रावण ने भी प्रसन्नता से उनका सन्मान किया तथा स्नेहपूर्वक हृदय से लगाकर उसे अपने पास बैठाया; उसका रूप देकर हर्षित हुए और कहा कि पहले इनके पिताजी पवनकुमार ने हमारी मदद की थी और अब ऐसे वीर तथा गुणवान हनुमान को भेजकर हमारे ऊपर बहुत ही स्नेह प्रदर्शित किया है। इसके समान बलवान योद्धा दूसरा कोई नहीं, इसलिए अब रण-संग्राम में वरुण राजा से हमारी जीत निश्चित है।''

यद्यपि रावण के पास दैवी आयुध होने से उनके द्वारा वह वरुण राजा को आसानी से जीत सकता था, परंतु उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि वरुण राजा को दैवी शस्त्रों के बिना ही जीतना है।

अब पुन: रावण ने वरुण राजा के साथ संग्राम शुरू किया। वरुण राजा की पुंडरीक नगरी लवण समुद्र के बीच में थी; हनुमान ने समुद्र

को लांघकर उसमें प्रवेश किया। भयानक लड़ाई शुरू हुई। वरुण के पुत्रों ने रावण को चारों ओर से घेर लिया। एकबार विद्या के बल से कैलाशपर्वत को भी हिला देनेवाला राजा रावण शत्रुओं से घिर गया – यह देखकर हनुमान तुरन्त ही वहाँ दौड़कर आये और उन राजपुत्रों पर झपट पड़े। जैसे हवा के थपेड़ों से पत्ते काँपने लगते हैं, वैसे ही पवनपुत्र के हमले से शत्रुओं के हृदय काँप उठे।

जैसे जिनमार्ग के अनेकांत के सामने एकांतरूप मिथ्यामत टिक नहीं सकते, वैसे ही हनुमानजी के सामने वरुण की सेना टिक नहीं सकी। हनुमान ने विद्या के बल से वरुण के सौ के सौ पुत्रों को पकड़ कर बाँध लिया। दूसरी ओर रावण ने भी वरुण राजा को पकड़ कर बंदी बना लिया।

इसतरह रावण की जीत होते ही उसके लश्कर ने वरुण राजा की पुंडरीक नगरी में प्रवेश किया तथा लश्कर के सैनिक उस नगरी को लूटने का विचार करने लगे, परन्तु नीतिवान राजा रावण ने उनको रोकते हुए कहा – ''प्रजा को लूटना – ये राजा का धर्म नहीं है; अपना वैर तो राजा वरुण के साथ था, प्रजा के साथ नहीं; प्रजा का क्या अपराध ? प्रजा को लूटना बड़ा अन्याय है – ऐसा दुराचार अपने को शोभा नहीं देता, इसलिए प्रजा की रक्षा कर उसे निर्भय बनाओ तथा वरुण राजा को छोड़कर उसका राज्य उसे सौंप दो'' ....रावण का ऐसा उदार व्यवहार देखकर सभी उसकी प्रशंसा करने लगे।

हनुमान को अनंगकुसुमा की प्राप्ति :–

लड़ाई के ठीक मौके पर आकर हनुमानजी ने रावण की रक्षा की, इससे रावण उसके ऊपर बड़ा खुश हुआ, अत: उसने अपनी भानजी (खरदूषण की पुत्री) अनंगकुसुमा के साथ विवाह कर उसे कर्णकुंडलपुर नगरी का राज्य उसको दिया।

जैसे भरत चक्रवर्ती के भाई बाहुबली प्रथम कामदेव थे, वैसे ही बजरंगबली हनुमान भी आठवें कामदेव थे, उनका रूप बेजोड़ था; पवनकुमार नाम के विद्याधर राजा और अंजना सती के वे पुत्र थे; उस राजपुत्र की ध्वजा में कपि (बंदर) का निशान था।

जैसे बाहुबली कामदेव होने से अद्भुत रूपवान थे; अनेक रानियाँ, पुत्र-पुत्रियाँ, राज परिवार वगैरह विशिष्ट पुण्य वैभव था; वैसे ही हनुमान कामदेव थे, उनका भी विशिष्ट पुण्य वैभव था। **बाहुबली तथा हनुमान दोनों कामदेव होने पर भी निष्काम आत्मा को जाननेवाले थे, चरमशरीरी थे, आत्मा के ब्रह्मस्वरूप के ज्ञानपूर्वक अन्त में राजपाट, रानियाँ आदि सभी को छोड़कर, परमब्रह्मस्वरूप निजात्मा में लीनता द्वारा मोक्षपद को प्राप्त हुये।**

वरुण से युद्ध करके वापिस आते समय वह पर्वत भी बीच में आया तथा वह वन और वह गुफा भी आई कि जिसमें वनवास के समय अंजना रहती थी, हनुमान उसे देखने के लिए नीचे उतरे और माता के वनवास के समय का निवास स्थान देखकर उन्हें बहुत वैराग्य जागृत हुआ। अहा, यहीं इसी वन में और इसी गुफा में मेरी माता रहती थी।

इस गुफा में विराजमान मुनिराज ने मेरी माता को धर्मोपदेश दिया था, तथा पूर्वभव भी कहे थे। अहा, यहीं मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। मेरी माँ उनके दर्शन-पूजन करते ही सभी दु:ख भूल जाती थी, यहाँ इसी गुफा में मेरा जन्म हुआ था। इसप्रकार विचार कर अपने जन्मधाम (गुफा) में बैठकर हनुमान चैतन्य का ध्यान करने लगे।

अहो, कुछ समय पहले लड़ाई और कुछ समय बाद ही निर्विकल्प शांतस्वरूप का ध्यान, वाह ! साधक धर्मात्मा की परिणति कैसी विचित्र है !! कैसी अद्भुतता भरी है उसके चैतन्यभाव में !!! अन्य भावों के समय वह उससे न्यारा ही न्यारा वर्तता है। वाह ! साधक ! धन्य है आपका जीवन, जो अन्य जीवों को भी भेदज्ञान और आराधना का ही बोध दे रहा है।

अहो **जीवो ! हनुमान जैसे धर्मसाधक जीवों के जीवन में उदयभाव के अनेक प्रसंगों को देखते हुए भी उनकी उदयातीत चैतन्यदशा को भूलना मत।** औदयिक भावों से जो भिन्न है, औदयिक भाव से भी जो अधिक बलवान है – ऐसे सम्यक्त्वादि **चैतन्यभावों से सुशोभित साधक जीवों के जीवन को पहचान कर उनका सन्मान करना।** अकेले औदयिकभावों को ही देखने मत लग जाना।

मार्ग में किष्किंधापुर नगरी आई, वहाँ का विद्याधर राजा सुग्रीव बड़ा ही पराक्रमी था, उसकी पुत्री पद्मरागा हनुमान पर मोहित हो गई। हनुमान का चित्त भी उसका चित्र देखकर आसक्त हो गया। इस कारण दोनों की शादी सम्पन्न हुई। उसके बाद हनुमान हनुमत द्वीप पहुँचे – ऐसे शूरवीर प्रतापवंत एवं धर्मात्मा पुत्र को देखते ही माता अंजना तथा पिता पवनकुमार आदि सभी बहुत प्रसन्न हुए तथा विजयोत्सव के साथ विवाहोत्सव भी मनाया।

(बंधुओ, अपनी इस कथा का सम्बन्ध हनुमान के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित अनेक प्रकरण **जैसे – राम और हनुमान मिलन, हनुमान का लंका-प्रयाण, बीच में एक अद्भुत घटना, हनुमान को लंका सुन्दरी की प्राप्ति, हनुमान-विभीषण संवाद, हनुमान का सीता से मिलन, हनुमान द्वारा सीता का पारणा आदि प्रसंगों का मार्मिक वर्णन जैनधर्म की कहानियाँ भाग ५ के पेज ७९ से १०० तक अवश्य पढ़ें।)**

अंजना का वैराग्य और दीक्षा :–

हनुमान ने श्रीपुर नगरी जाकर अंजना माता से सभी बातें कीं। सीताजी का वनवास, अग्निपरीक्षा, शील का प्रभाव – इन सभी बातों को सुनकर, अपनी एक धर्म सखी का ऐसा प्रभाव देखकर अंजना खुश हुई; परंतु जब हनुमान ने कहा कि ''सीता ने दीक्षा ले ली है''....यह बात सुनते ही अंजना का चित्त भी संसार से उदास हो गया....वाह सीता ! तूने उत्तम मार्ग लिया। जीवन में सुख-दुःख के अनेक प्रसंगों के बीच भी धैर्य रखकर तूने आत्मा की साधना की और अंत में अर्जिका हो गई। वाह बहन ! धन्य है तू ! मैं भी तेरे समान दीक्षा लूँगी।

''बेटा हनुमान ! सीताजी ने दीक्षा ली, वैसी ही दीक्षा लेकर अब मैं भी अर्जिका होना चाहती हूँ। संसार में बहुत दुःख-सुख देखे, अब तो राग-द्वेष से रहित चैतन्यपद को साधकर शीघ्र इस संसार से छूटना है।

बेटा ! मुझे संसार में एक तेरा मोह था, तेरा राग मैं छोड़ नहीं सकती थी; परंतु अब जैसे सीता ने लव–कुश का मोह छोड़ा, वैसे ही मैं भी तुझे छोड़कर अर्जिका बनूँगी। मैंने पहले से ही निश्चय किया था कि जब सीता अर्जिका बनेगी, तब मैं भी अर्जिका बनूँगी। वह

धन्य घड़ी अब आ पहुँची है, इसलिए बेटा हनुमान ! तू मुझे दीक्षा लेने की स्वीकृति दे।''

जब से सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग देखा था, तब से स्वयं हनुमान का मन एकदम वैराग्यमय हो गया था। माता की वैराग्यभरी बातें सुनकर तुरंत उसने अनुमोदना की –

''धन्य माता ! आपका विचार अति उत्तम है। पहले से ही आपने मुझे वैराग्य का अमृत पिलाया है, अत: मैं भी वैराग्य के लिए आपको नहीं रोकता। माता ! इस संसार में प्रीति-अप्रीति में कहीं शांति नहीं; शांति चैतन्यधाम में ही है; उसे जाननेवाली आप खुशी से अर्जिका होओ। मैं आपको नहीं रोकता। मैं भी थोड़े ही समय बाद इस असार-संसार को छोड़कर मोक्ष को साधूँगा।''

इसप्रकार कहकर हनुमान ने अपनी माता की दीक्षा का बड़ा उत्सव किया। सीताजी के समान अंजनादेवी भी अर्जिकापद सहित शोभायमान होने लगीं। धन्य हैं दोनों सखी !

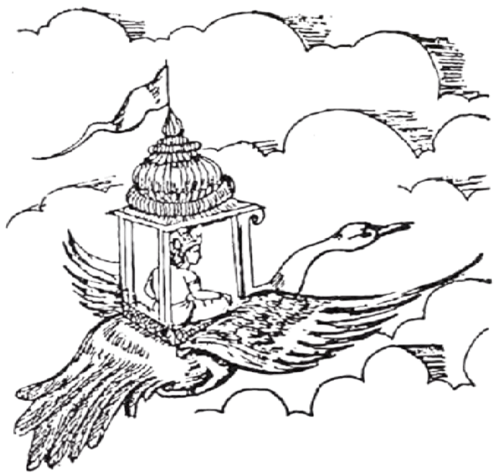

हनुमान की मेरुयात्रा :–

कर्णकुण्डल अथवा श्रीपुर नगर में पवनपुत्र राजा हनुमान आनंद से राज्य करते हैं; वहाँ उनकी 'सदन निवासी तदपि उदासी' – जैसी दशा वर्त रही है। माता अंजना की

दीक्षा के बाद हनुमान का चित्त संसार में कहीं नहीं लगता। गगन-गामित्व वगैरह अनेक विद्यायें, महान ऋद्धियाँ, विमान, सुन्दर बाग-बगीचे, महल, राज्य-परिवार – इन सबके मध्य रहने पर भी उनकी चेतना अपने इष्ट ध्येय को कभी भी नहीं चूकती।

जैसे मुनिराज के अन्तर में रत्नत्रय का बगीचा खिल उठता है, वैसे ही जिनका चित्त जिन-भक्ति से भीगा हुआ है, जिनके अंतर में भक्ति के फूल महक रहे हैं – ऐसे हनुमान को तो मेरुतीर्थ की वंदना की भावना जगी।

अत्यंत हर्षपूर्वक रानियों एवं हजारों विद्याधरों सहित यात्रा करने के लिए वे सुमेरुपर्वत की ओर चल दिए। अहा, हनुमान का संघ तीर्थयात्रा करने आकाशमार्ग से सुमेरु की तरफ जा रहा है। रास्ते में अनेक भव्य जिनालयों तथा मुनिवरों के दर्शन करने से सभी आनंदित हुए। बीच में भरतक्षेत्र के बाद हिमवत और हरिक्षेत्र आया, (जहाँ जुगलिया जीवों की भोगभूमि है) तथा हिमवान, महाहिमवान और निषध – ये तीन महापर्वत आये; इन तीनों कुलाचलों के अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करके आनंद करते-करते सभी मेरुपर्वत पर आ पहुँचे।

अहो ! जिस पर इन्द्रों ने अनंत तीर्थंकरों का जन्माभिषेक किया है। जहाँ से अनंत मुनिवरों ने मोक्ष पाया है। जिस पर रत्न के जिनबिम्ब सदा ही शाश्वत विराजमान हैं, ऋद्धिधारी मुनिवर भी यात्रा के लिए आकर जहाँ आत्मा का ध्यान धरते हैं – ऐसे इस शाश्वत तीर्थ की अद्‌भुत शोभा देखकर हनुमान को जो महान आनंद हुआ, उसकी क्या बात कहें? अरे ! जिस तीर्थ का नाम सुनते ही अपना मन भक्ति से उसके दर्शन के लिए उल्लसित होता हो तो उस तीर्थ के साक्षात् दर्शन करने से होनेवाले हर्ष की तो बात ही क्या करें ? – मात्र एक

आत्मानुभूति के सिवाय जगत में जिनवर-दर्शन जैसा आनंद अन्यत्र कहीं नहीं। हनुमान सभी को मेरूतीर्थ का दिव्य शोभा बतलाते हैं, जिनवर देवों की अपार महिमा समझाते हैं और बारंबार जिनेन्द्रदेव के समान निज स्वरूप के ध्यान की प्रेरणा जगाते हैं।

सुमेरू पर्वत पर सबसे प्रथम भद्रशालवन है। उसमें ४ शाश्वत जिनालय हैं; ऊपर जाने पर दूसरा नंदनवन तथा तीसरा सोमनसवन आता है। वहाँ भी दोनों में ४-४ अकृत्रिम मंदिर हैं; उन मंदिरों की अद्भुत शोभा देखते ही आश्चर्य होता है और उनमें विराजमान भगवान की वीतरागता देखते ही आश्चर्य से भी पार ऐसी चैतन्यवृत्तियाँ जाग उठती हैं – ऐसे तीनों वनों में आनंद से दर्शन करके जय-जयकार करते सभी मेरु के सबसे ऊपर चौथे और अंतिम पांडुकवन में आये। कितने ही देव भी हनुमानजी के साथ मेरु की यात्रा में भाग ले रहे हैं।

हनुमानजी सभी को बतलाते हैं – "देखो, ये स्फटिक की पांडुकशिला ! ये महापूज्य है। यहाँ भरतक्षेत्र के तीर्थंकर भगवंतों का जन्माभिषेक होता है, इससे यह कल्याणक तीर्थभूमि है। अनंत मुनिवर यहाँ से ही मोक्ष पधारे हैं, इससे ये शाश्वत सिद्धक्षेत्र भी है। यहाँ परम अद्भुत जिनालयों में जलहल ज्योति समान रत्नमय जिनबिम्ब शोभायमान हैं, मानो अभी-अभी केवलज्ञान प्रगट हुआ हो – ऐसे शोभित हो रहे हैं और आत्मा के पूर्णस्वरूप को प्रकाशित करते हैं, छत्र-चँवर-भामंडल वगैरह की दिव्य शोभा से इस पांडुकवन के मंदिर ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो मेरुपर्वत का रत्नजड़ित मुकुट ही हो ?"

(वाचक ! अभी हनुमानजी वगैरह जिस स्थान की यात्रा कर रहे हैं, वह कितना ऊँचा है ? – क्या इसका पता है ? सुनो, मेरुपर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, उसके ऊपर के भाग में पांडुकवन है। सूर्य-चन्द्र तो पूरे १००० योजन ऊँचे भी नहीं, ये तो सूर्य-चन्द्र से

भी अधिक लगभग ९९००० योजन ऊँचे (अर्थात् लगभग ४० करोड़ मील ऊँचे) ???? हैं। अभी अपने कथा-नायक हनुमानजी वहीं की आनंद से यात्रा कर रहे हैं।

हनुमान तथा समस्त विद्याधरों को मंदिरों के दर्शन से अति ही हर्ष हुआ; बहुत भाव से जिनगुण गाते-गाते मंदिरों की प्रदक्षिणा की। जैसे सूर्य-चन्द्र मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं, वैसे ही सूर्य समान तेजस्वी हनुमान वगैरह एक लाख योजना जितनी ऊँचाई पर मेरु की प्रदक्षिणा करने लगे, बारम्बार दर्शन करने लगे; बाद में सभी ने कल्पवृक्षों के पुष्पों से और रत्नों के अर्घ्य द्वारा महान विनय से पूजन की।

अहा ! मेरु जैसा महातीर्थ, जिसमें सर्वज्ञ-वीतराग जैसे पूज्य देव, उसमें भी हनुमान जैसे चरमशरीरी साधक पुजारी – उस महान पूजा की क्या बात करना ? बहुत से देव और विद्याधर आश्चर्य पाकर जैनधर्म की महिमा से प्रभावित होकर सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। सभी के हृदय और नेत्र हर्षित हो उठे। पूजन के बाद हाथ में वीणा लेकर हनुमानजी ने अद्भुत भक्ति से जिनगुण गाये....कि अप्सरायें भी भक्ति से नाचने लगीं। ऐसा लगता था मानो वीतरागी होते-होते बाकी बचा हुआ सारा का सारा शुभराग यहाँ उडेल दिया हो, इसप्रकार हनुमानजी ने खूब-खूब भक्ति की। देहभाव से पार होकर आत्मभावों में तन्मयता पूर्वक होनेवाली ऐसी अद्भुत भक्ति ऐसे मोक्ष के साधकों की ही होती है।

अहो, ऐसी जिनेन्द्र-भक्ति देखने वालों का भी जन्म सफल हो गया। वाह रे वाह ! तद्भव मोक्षगामी हनुमान ! तुम्हारी अद्भुत जिनभक्ति ! ये भव्यजीवों को रोमांचित एवं उल्लसित करके मोक्ष का उत्साह जगाती है।

इसप्रकार हनुमानजी ने मेरुतीर्थ पर अति भक्तिभाव पूर्वक दर्शन-पूजन-भक्ति सहित यात्रा की। अनेक मुनिराज वहाँ विराजमान थे, उनके

भी दर्शन किये तथा उनसे शुद्धात्मा का उपदेश सुना। हजारों जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। ध्यानस्थ वीतरागी मुनिराजों को देखकर हनुमान भी ध्यान करने लगे तथा स्वरूप एकाग्रता द्वारा आत्मा को ध्याते-ध्याते कोई परम-अद्भुत निर्विकल्प आनंदानुभूति की ! अहा ! उसकी तो क्या बात !!

इसप्रकार इष्ट ध्येय को पाकर और मुनिवरों का मंगल आशीष लेकर हनुमानजी ने मेरुपर्वत से वापिस भरतक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में सुर-दुन्दुभि नाम के पर्वत पर रात्रि वास किया। रात में सभी आनंदपूर्वक तीर्थयात्रा और जिनेन्द्र महिमा की चर्चा करते थे....सर्वज्ञदेव के स्वरूप की पहिचान होने से आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप किस प्रकार पहचाना जाता है ? राग तथा ज्ञान का भेदज्ञान होकर जीव को अपूर्व सम्यक्त्व किसप्रकार प्रगट होता है ? इन बातों को हनुमानजी अत्यंत प्रमोदपूर्वक समझाते थे।

हनुमानजी का वैराग्य-प्रसंग :–

अंधेरी रात है, आकाश में तारागण जगमगा रहे हैं और अद्भुत अध्यात्म चर्चा में सभी मग्न हैं....इतने में ही अचानक आकाश से घररर-घररर की आवाज करता हुआ एक तारा टूटा और चारों तरफ से बिजली जैसी चमकी।

बस ! तारा टूटते ही मानो हनुमानजी का संसार ही टूट गया हो, तारे को गिरता देखते ही हनुमानजी को भी तुरंत संसार से विरक्ति आ गई। जगत की क्षणभंगुरता देखते ही वे देहादिक संयोगों की अनित्यता का चिंतन करने लगे। परम वैराग्य से बारह भावनायें भाने लगे। अरे, बिजली की चमक के समान इन संयोगों और रागादि की क्षणभंगुरता – ऐसे क्षणभंगुर संसार में चैतन्यतत्त्व के सिवाय दूसरा कौन शरण है ?

ये राजपाट भोग सामग्री कुछ भी इस जीव को शरण या साथीदार नहीं; रत्नत्रय की पूर्णता ही शरणरूप, साथीदार और अविनाशी मोक्षपद को देनेवाली है। हनुमानजी विचारते हैं – '**बस अब तो मुझे शीघ्र रत्नत्रय की पूर्णता का ही उद्यम कर्त्तव्य है।**''

हनुमानजी ने अपनी भावना मंत्रियों और रानियों को बतलाई – ''अब मैं इस संसार को छोड़कर मुनि होना चाहता हूँ और इस संसार का छेद करके मोक्षपद प्राप्त करना चाहता हूँ....अरे अरे ! राग के वश जीव संसार में दु:ख भोगता है, वीतरागता के सिवाय कहीं सुख नहीं हैं।'' कहा भी है –

इसलिए न करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को।
वीतराग होकर इस तरह, वह भव्य भवसागर तिरे।।

अरे रे, मूर्खजीव अल्पकाल के विषय-भोगों के पीछे अनन्त काल का दु:ख भोगते हैं, परन्तु विषयों में सुख कैसा ? यह तो मात्र कल्पना है। देवलोक के भोगों में भी आत्मा का सुख नहीं। चैतन्य का अतीन्द्रिय सुख जीव का स्वभाव है और यह सुख सदाकाल टिकने

वाला है। अत: अब मैं मुनि होकर आत्मा के अतीन्द्रिय सुख को ही पूर्णपने साधूँगा।

महाराजा हनुमान ऐसी भावनापूर्वक मुनि होने को तैयार हो गये। मंत्रियों ने बहुत समझाया, रानियों ने भी अपनी अश्रुभीगी पलकों से उन्हें रोकने की बहुत कोशिश की; परन्तु हनुमान को उनकी दृढ़ता से उन्हें कौन डिगा सकता है ? दृढ़चित्तवाले हनुमान वैराग्य भावना से जरा भी नहीं डिगे....वे कहने लगे –

''हे मंत्रियो, हे रानियो ? वृथा है यह मोह, इसे छोड़ो, इस संसार के भयंकर दु:खों को क्या तुम नहीं जानते ? मोह के वश होकर जीव ने संसार में अनेक भव धारण कर परिभ्रमण किया। अब तो बस हो इस संसार से ! मुझे बहुत समय से मुनि होने की भावना तो थी ही, परन्तु मुझे माता का मोह विशेष था, उस मोह का बंधन मैं तोड़ नहीं सकता था, अब तो जब मेरी माता अंजना ही मेरा मोह तोड़कर अर्जिका बन गई हैं, तब मेरा भी मोह टूट गया है। मेरी माता ही मानो मुझे आवाज देकर वैराग्यमार्ग में बुला रही हैं। राग का एक अंश भी अब मुझे सुहाता नहीं।

हे रानियो ! तुम शांत होओ; रुदन करके व्यर्थ में ही आर्त्तध्यान करके अपना अहित न करो....हे मंत्रियो ! तुम राज्यपुत्र का राज्याभिषेक करके राज्य-व्यवस्था संभालना ! हम तो अब जिन-दीक्षा लेकर मुनिवरों के साथ रहेंगे और शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को ध्याकर केवल्य लक्ष्मी का वरण कर सिद्धराज को प्राप्त करेंगे। अब मुझे एक क्षण का भी विलम्ब नहीं सुहाता।''

वाह रे वाह ! जिनशासन के वीतरागी रहस्य को जाननेवाले राजा हनुमान तो आभूषण उतारकर मुनि होने चले। रानियाँ भी हनुमान के उपदेश से प्रतिबोध पाकर खेद छोड़कर दीक्षा लेने को तैयार हुईं। हजारों

विद्याधर भी वैराग्य पाकर हनुमान के साथ ही दीक्षा लेने को तैयार हुए। सिद्धालय में जिस मार्ग से अनन्त जिनवरेन्द्र मोक्ष पधारे, उसी मार्ग पर जाने के लिए सभी उद्यमी हुए। वाह रे वाह ! धन्य वह प्रसंग !!

निकट में ही चारण ऋद्धिधारी मुनिवरों का संघ विराजमान था। मोक्षमार्ग को साधनेवाली मुनिराजों की भव्य मंडली आत्मध्यान में मग्न

बैठी थी। वाह ! मोक्ष के साधक मुमुक्षुओं की मंडली देखकर हनुमान के आनन्द का पार न रहा।

मोक्ष-मंडली में मिल जाने के लिए महा विनय से उनको वंदन करके हनुमान ने प्रार्थना की – ''**हे प्रभो ! मेरा चित्त इस संसार से सर्वथा विरक्त हो गया है और मैं शुद्ध आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिये जिन-दीक्षा लेना चाहता हूँ; अत: आप कृपा करके मुझे पारमेश्वरी दीक्षा दीजिए!**

प्रभो ! अब मैं भी इस भव-दु:ख से छूटकर जन्म-मरण रहित परमपद को प्राप्त करना चाहता हूँ।''

मुनिवरों ने हनुमान के वैराग्य की प्रशंसा की – ''अहो भव्य ! तुमने उत्तम विचार किया....तुम चरमशरीरी हो, शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण करो। इस जगत को तुमने असार जाना है और परम सारभूत चैतन्यतत्त्व को तुमने अनुभवा है, इससे तुम्हें मुनि बनकर मोक्ष को साधने की कल्याणकारी बुद्धि उपजी है – धन्य है तुम्हें ! तुम शीघ्र मुनिधर्म अंगीकार करके अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित करो।''

श्री मुनिवरों की आज्ञा पाकर हनुमानजी ने उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार किया। मुकुट हार आदि समस्त वस्त्राभूषण उतारे.... अन्त में समस्त संसार का राग भी छोड़ा – ऐसे सर्वप्रकार से निर्ग्रंथ होकर मोह-बंधन तोड़कर वीर हनुमान मुनि हुये। कामदेव होने से उनका शरीर का रूप तो अद्भुत था ही, अब तो रत्नत्रय के सर्वोत्कृष्ट आभूषणों से उनका आत्मा भी शुद्धोपयोग सहित अतिशयरूप से सुशोभित होने लगा।

वाह, शुद्धोपयोगी संत हनुमान ! आपको हमारा नमस्कार हो !!

हनुमानजी के साथ में अन्य हजारों विद्याधर भी मुनि हुये। हजारों विद्याधर-रानियाँ, श्रीबंधुमती अर्जिकाजी के पास जाकर अर्जिका हुईं। हनुमानजी की दीक्षा के इस महावैराग्यमय प्रसंग को देखकर अनेक प्रजाजनों ने श्रावक के व्रत लिये। इसप्रकार जैनशासन का महान उद्योत हुआ।

श्री शैल मुनिराज शैलेश (पर्वत) से भी अधिक अचलरूप से चारित्र का पालन करने लगे। उनका अद्भुत वीतरागी चारित्र देखकर इन्द्र भी उनको नमस्कार करके उनकी प्रशंसा करने लगे। राम-लक्ष्मण ने भी उनको वंदन किया। वे अपनी निर्विकल्प स्वानुभूति में ही मग्न थे, अत: उनका दिव्य वीतरागी रूप देखकर मोक्षलक्ष्मी भी प्रसन्न होकर दौड़ी चली आ रही थी; परन्तु शुद्धोपयोग में लीन मुनिराज

हनुमान तो उस समय शुक्लध्यान के अहिंसा चक्र द्वारा सर्व कर्मों का क्षय करके ज्ञानानन्द स्वभाव को साध रहे थे।

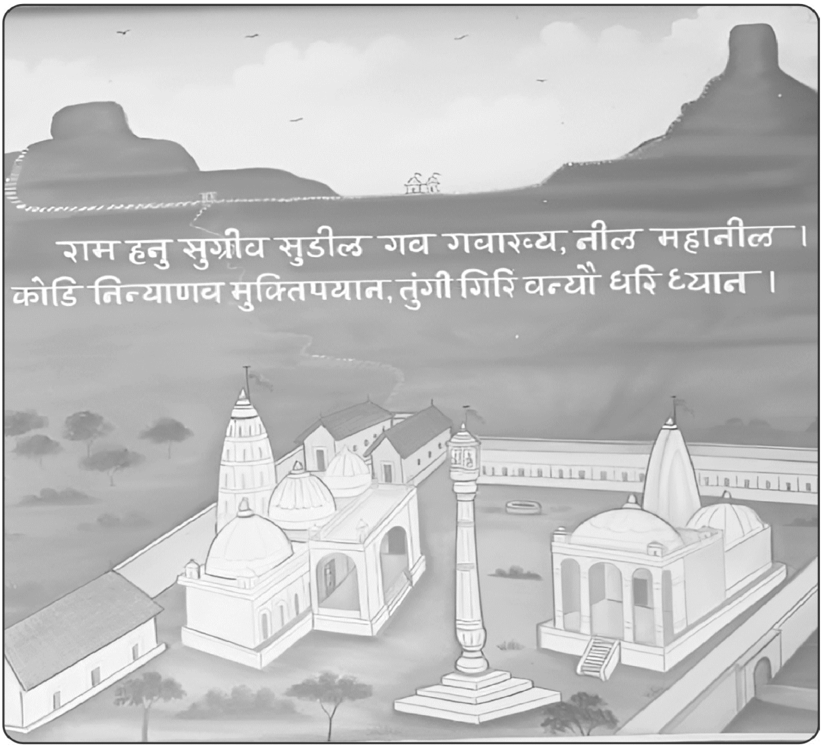

केवलज्ञान होने पर वे विहार करते हुए मांगी-तुंगी पधारे और वहाँ के तुंगीभद्र गिरि-शिखर से मोक्षदशा प्रगट करके सिद्धपद को प्राप्त हुए, अभी भी वह मुक्तात्मा अपने परम ज्ञान-आनंद सहित बराबर लोकाग्र में तुंगीभद्र के ऊपर समश्रेणि में, सिद्धालय में, अनंत सिद्ध भगवंतों के साथ विराज रहे हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो।

▲ हमारे प्रकाशन ▲

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	25/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे–

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।